हरिः ॐ

पूज्य श्रीमोटा

विवाह हो मंगलम्

॥ हरि:ॐ ॥

विवाह हो मंगलम्

पूज्य श्रीमोटा

संपादक
रजनीभाई (ट्रस्टी हरि:ॐ आश्रम, सुरत)

अनुवादक
डॉ. कविता शर्मा 'जदली'

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

● **प्रकाशक :**
हरि:ॐ आश्रम,
जहाँगीरपुरा, वाया रांदेर,
सूरत - ३९५००५
फोन : (०२६१) २७६५५६८, २७७१०४६

© हरि:ॐ आश्रम, सूरत : ३९५००५

● प्रथम संस्करण २०१२

● **पृष्ठ :** २२२ + २६ = २४८

● **मूल्य : रु. २५-००**

● **प्राप्तिस्थान :**
(१) हरि:ॐ आश्रम, जहांगीरपुरा, सूरत - ३९५००५
(२) हरि:ॐ आश्रम, पो. बो. नं. ७८, नड़ियाद-३८७००१
फोन : (०२६८) २५६७७९४

● **डिझाइनर : मयूर जानी, (मो.) ९४२८४०४४४३**

● **अक्षरांकन : अर्थ कॉम्प्यूटर**
२०३, मौर्य कॉम्प्लेक्स, सी. यू. शाह कॉलेज के सामने,
इन्कमटेक्स, अहमदाबाद-३८० ०१४ फोन : २७५४३६९९

● **मुद्रक : साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.**
सिटी मिल कंपाउन्ड, कांकरिया रोड,
अहमदाबाद-३८० ०२२ फोन : (०७९) २५४६९१०१

॥ हरि:ॐ ॥

समर्पणांजलि

चम्बा, (हिमाचल प्रदेश) के निवासी, अपने योग से आपकी प्रथम मुलाकात पूज्य श्रीमोटा से नडियाद आश्रम, गुजरात में हुई। व्यवसायी डाकटर दंपति होने के साथ साथ भारतीय संस्कृति के साथ प्रयोगात्मक जीवन जीने की इच्छा से मौनरूम में रहकर जीवनविकास का प्रयोग करनेवाले डा. साहब और विशेषत: अपने पूरे परिवार को श्रेष्ठ शिक्षण, संस्कार, अन्य तमाम सुविधा से लालन-पालन करते हुए, आज बड़ी उम्र में भी अपनी दाकतरी व्यवसाय एवं अपने पति की पूरे तन, मन धन से सेवा करनेवाली संनिष्ठ नारी, आप दोनोंने समाजसेवा को ही अपनी प्रभुभक्ति समझ के पूरी जिंदगी बिताई ऐसे संनिष्ठ, आदरणीय सज्जन मनोचिकित्सक

डॉ. कैलास कौशल

एवं उनकी धर्मपत्नी

आदरणीय सन्नारी

डॉ. इन्दिरा कौशल

को, पूज्य श्रीमोटा लिखित दांपत्यजीवन में मार्गदर्शक पत्रों का हिन्दी अनुवाद 'विवाह हो मंगलम्' पुस्तक का प्रथम संस्करण समर्पण करते है।

दिनांक : २८-१-२०१२ **ट्रस्टीगण**

वसंतपंचमी हरि:ॐ आश्रम, सुरत

॥ हरिः ॐ ॥

॥ कुर्यात् सदा मंगलम् ॥

(संपादकीय)

पूज्य श्रीमोटा हमारे जमाने के एक विशिष्ट व्यक्तित्व हैं । २३ जुलाई १९७६में 'अपनी इच्छानुसार आनंदपूर्वक देहत्याग' करने के पश्चात् आपश्री चेतनस्वरूप हैं; जो कोई आपश्री को किसी न किसी निमित्त से याद करता है, उसके हृदय में वे सक्रिय होते हैं और उसके जीवन को उर्ध्व गतिमें प्रेरित करते हैं । आध्यात्मिक विज्ञान की यह वास्तविकता मात्र अनुभवमूलक होने से शब्दों द्वारा उसे संपूर्ण व्यक्त करना कठिन है । पूज्य श्रीमोटा का परमात्मानुभव अपूर्व है और उसकी सक्रियता विलक्षण और गूढ़ है । इसलिए जिस-तिस व्यक्तिकी जागृतिपूर्वक की जीवनविकास के प्रति उन्नत भावना को चरितार्थ करने की संकल्पवृत्ति हो और उस भावना से संकल्प की दिशा में गति करने का पुरुषार्थ हो तो वह आपश्री के चेतन रूप के स्पर्श के परिणाम प्राप्त किया जा सकता हैं ।

इस पुस्तक की प्रस्तावना में इतने शब्द इसलिए आवश्यक हैं कि अब आनेवाले पृष्ठोंमें आपश्री के निमित्तयोग से होती सहज सक्रियता ही - तथा उसकी प्रक्रिया निर्दिष्ट की है । पूज्य श्रीमोटाने स्वयं ही **'स्थूल मोटा'** और **'चेतन मोटा'** इन दो रूपों में भेद किये हैं । जो आकृतिगत

रूप है, वह प्रगट हुए **चेतन** का देहरूप है । यह देहरूप स्थूल है, नश्वर है; जबकि हृदय में 'परमात्मा' प्रगट हुए हैं, वे '**चेतन मोटा**' हैं । वे शाश्वत हैं, सर्वव्यापक हैं, और हम सभी के हृदय के साथ जुड़े हैं । इस वास्तविकता के प्रति हमारी सभानतायुक्त जागृतिपूर्वक की स्मृति और आपश्री द्वारा प्रेरित किये गये मार्ग पर प्रयाण करने की तमन्नायुक्त तत्परता हमारे जीवन के विकास के लिए समय को संक्षिप्त करती है । यह अनुभव व्यक्तिनिष्ठ है और सापेक्ष है । इससे केवल इतनी स्पष्टता द्वारा सर्वसंमति नहीं मिल पाये, यह भी स्वाभाविक है ।

ऐसी ही दूसरी एक वास्तविकता का उल्लेख आपश्री ने किया है । आपश्री को कभी नहीं मिले ऐसे अनेक जीवों के प्रति आपश्रीका निमित्त है, इससे आपश्री को ऐसे अनेक जीवों के लिए 'भाव' है । (यहाँ हम अनुभव करते हैं, ऐसी माँग करनेवाली भावना नहीं समझनी है, पर परमात्मा के सहज सूक्ष्म आकर्षण का अर्थभाव ग्रहण करना है ।) इस वास्तविकता का कोई नहीं स्वीकार करेगा पर आपश्री के **अनुभव** की यह वास्तविकता है, ऐसे पूज्य श्रीमोटा के अक्षरस्वरूप का माध्यम भी यदि आपश्री के हृदय के प्रति आकर्षण का अनुभव कराये तो भी इस निमित्त से उस जीव में कल्याणकारी भावनाओं का उदय होगा और ऐसी भावना रखकर जीने के लिए कल्याणकारी

भावनाओं का उदय होगा और ऐसी भावना रखकर जीने के लिए ये जीव उत्साही बनें । इस अर्थ में जब पूज्य श्रीमोटा इस पुस्तक के पत्रों में तथा अनेक अन्य लेखों में ऐसा कहते हैं कि '**मोटा** हमेशा तुम्हारे साथ हैं', तब उस पत्र को पानेवाले अकेले व्यक्ति के पर्याप्त यह कथन नहीं है, पर आपश्री के ये शब्द जो पढ़ता है, उसके लिए भी उतना ही सच है ।

'विवाह हो मंगलम्' दाम्पत्यभावना को स्पष्ट करता है । उस भावना अनुसार जीवन जीने को प्रेरित करने की दृष्टि से विशेष संपादित की गई पुस्तक है । इससे पहले 'पूज्य श्रीमोटा की दाम्पत्यभावना' पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है । उसी विषय यह दूसरी पुस्तक है । इसका अधिकतर हिस्सा पूज्य श्रीमोटा के अप्रकाशित पत्रों का है। इससे पूर्व प्रकाशित हुए पुस्तकों से पति-पत्नी के बीच के व्यवहार विषयक जो प्रकाशित हुआ है, उसमें से कुछ अंश इस पुस्तक में पुनः लिए गए हैं, तब भी 'पूज्य श्रीमोटा की दाम्पत्यभावना' से भिन्न यह पुस्तक है; उस पुस्तक में स्थूल व्यवहार की कितनी ही समस्याएँ नहीं थीं, जबकि इस पुस्तक में दाम्पत्यभावना का मूल तथा उस भावना की वैचारिक स्पष्टता; उस भावना को प्रतिष्ठित करने की पद्धतियाँ; उसके लिए अनुभव किये जानेवाले संघर्ष और उनमें से पार उतरने की संभावनाएँ इस पुस्तक में समझाई

गई हैं । इसके अलावा पति पत्नी के बीच भावना के विरोध में से उत्पन्न होनेवाले टकवारों को टालने की पद्धति; परस्पर सही अर्थ में चाहने की और एकरूप होने में आनेवाले अवरोधों की स्पष्टताएँ; परिस्थिति, संयोग या समय के कारण उलझी स्थितियों से जीवन में होनेवाली भूलों से उबरने का व्यावहारिक मार्गदर्शन तथा संततिनियमन, दाम्पत्य में किसी 'तीसरे' व्यक्ति का प्रवेश, उसमें से पैदा होनेवाले संताप, क्लेश, झगड़े निपटाने के उपाय; वृत्ति के वेग में बहकर होती भूलें तथा उनके परिणामों के प्रति विवेक की दृष्टि आदि बातें इस पुस्तक में प्रथम बार ही प्रकाशित हो रही हैं । ये बातें हमारी दृष्टि, वृत्ति और अभिगम पर प्रकाश डालनेवाली हैं और समाज को स्वस्थ बनानेवाली हैं ।

पूज्य श्रीमोटाने विवाह को मात्र सामाजिक व्यवस्था रूप में नहीं देखा, अतः आपश्री के इस लेखन को केवल समाजशास्त्र की दृष्टि से मूल्यांकन न किया जाय अलबत्ता, विवाह समाज व्यवस्थारूप में या सामाजिक संस्थारूप में हमारे सामूहिक व्यावहारिजीवन में व्यक्त हुआ है; परंतु विवाह का प्रयोजन और उसका उद्देश्य बिलकुल अलग है । **पूज्य श्रीमोटा ने वृत्ति प्रेरक अज्ञानमूलक अनेक जन्मों की 'यह' या 'वह' प्रकार के टकराव के फलस्वरूप दो**

जीवों के मिलन को 'विवाह' कहा है । इससे स्त्री-पुरुष के बीच निर्मित यह संबंध अनेक जन्मों के गूढ़ कर्मों के परिणाम के रूप में देखना चाहिए अतः आपश्री कहते हैं, ऐसे संबंध टालने पर टले ऐसा नहीं है ! पति-पत्नी के बीच के स्थूल आकर्षण, प्रकट विरोध, वैचारिक एवं भावनात्मक संघर्ष आदि के मूल में क्या है, इसे जानना और उसमें से जीवन को उन्नत बनानेवाले की भावना को लक्ष में रखकर ज्ञानयुक्त अभिगम से यह सब टालकर **एकरूप** होना, विवाह संबंध का उद्देश्य है ।

यदि जीवन में सनातन सुख का अनुभव करना हो तो विवाहजीवन के उद्देश्य को समझना ही होगा । पति-पत्नी के संबंधरूप में स्त्री-पुरुष संसार में भले ही स्थूल भूमिका में विहार करें, क्योंकि यह व्यवहार प्रारब्ध कर्म के परिणाम स्वरूप है, परंतु इस अवस्था को स्थायी मान लेने से विवाह का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता ! इसलिए इस जन्म में पति-पत्नी का जो संबंध बना है, उसके द्वारा हृदय के विविध भावों को पहचानने-समझने और उसके रूपान्तर द्वारा हृदयस्थ चेतन की **एकता** को अनुभव कर स्त्री-पुरुष का हृदयस्थ ऐक्य इस ढंग की जीवनपद्धति से सिद्ध करना ही तो ही विवाह का उद्देश्य फलित होगा ।

इसलिए पूज्य श्रीमोटा ने जीवन में मौलिकता लाने को कहा है ।

(शार्दूल)

'सर्व सामान्य पथ में सभी जग जन चला करें उस में
क्या पुरुषार्थ रहा वहाँ रुचि उस जीव की भला क्या ?
जिसमें मौलिकता नहीं जीवन मिथ्या जीया जानना;
जिसमें है बलिदान, यज्ञ तप है, वही जीना जीया भला ।'

सामान्य प्रवाह में बह जाना सहज 'निर्बलता' है । इसीसे रूढ़ियुक्त सामान्य जीवन बारम्बार नीरसता, ऊब, चिढ़ आदि उत्पन्न करता है और यदाकदा पलायन करने की वृत्ति पैदाकर मनुष्य को नामर्द बनाती है । इसीलिए पूज्य श्रीमोटा 'मौलिकता' रहित जीवन को मिथ्या बतलाते हैं और यज्ञ, तप, बलिदान जैसी भावनावाले जीवन को प्रोत्साहित करते हैं । क्योंकि इस तरह जीने के लिए जो पुरुषार्थ करना पड़ता है, इसीसे जीवन में नया-नया रस का अनुभव होता है । प्रत्येक व्यक्ति ऐसा जीवन चाहता है, पर उसके लिए जो पुरुषार्थ करना चाहिए, वह करने के लिए तत्पर नहीं होता है । क्योंकि विवाहित जीवन का जो उद्देश्य है, वह हृदय में स्पष्ट नहीं हुआ है, विवाहित जीवन द्वारा हृदयभावों को विकसित कर, उत्फुल्ल कर, जो **ऐक्य** अनुभव करना है, वह ध्येय ध्यान में नहीं रहता है, जिससे जीवन बिखर जाता है ।

पूज्य श्रीमोटा ने आनंदयुक्त जीवन के लिए 'पुरुषार्थ' की बात की है, यह मार्मिक है । **आत्मा पुरुष के लिए**

जो आचरण करना है, वह पुरुषार्थ है । हमारे हृदय की गहरायी में रही आत्मा को – चेतन को – उसके गुणधर्मों को अनुभव करना, यह हम सभी के जीवन का ध्येय है । **आत्मा का अकर्तापन अनुभव करने के लिए 'मैं करता हूँ' ऐसा अहंकारी भाव न रख जागृत रहा करना यह बड़ा 'बलिदान' है । इसके लिए जो कुछ कष्ट सहन करना पड़े वह 'तप' है । जीवन के ऐसे ध्येय के प्रति निरन्तर जाग्रत रहते हुए इस तरह आचरण करे यही ज्ञानयज्ञ है ।** हम सभी में विद्यमान सर्वोच्च जीवन भाव को प्रकट करने के लिए पूज्य श्रीमोटा की वाणी प्रेरित कर रही है । इसके लिए अपनी प्रकृति को समझना, वृत्तियों को पहचानना, उनका उपयोग करते समय ध्येय के प्रति जागृति धारण करना, आवश्यक है । पति-पत्नी के बीच के शारीरिक जातीय संबंध, संसार व्यवहारों के समय उठते रूख, संस्कार आदि के प्रति तिरस्कार करना या उसकी उपेक्षा करने को पूज्य श्रीमोटा कभी नहीं कहते । आपश्री ने तो जीवन में मौलिकता लाने के लिए उन सभी का उपयोग किस तरह करें उसे बतलाया है । **पत्नी के अंग-उपांगों का आकर्षण अनुभव करते और उपयोग करते हुए किस प्रकार की जागृति रखनी चाहिए; पति-पत्नी को परस्पर के जातीय आवेग किस तरह उपयोग करें आदि विषयक बहुत सूक्ष्म**

ढंग से इंगित किया गया हैं । इससे इस पुस्तक की उपादेयता बहुत बढ़ जाती है ।

इसके साथ ही आपश्री ने स्त्री-पुरुष को अपनी अवस्था के प्रति किस तरह सावधानी रखनी चाहिए, यह दर्शाया है । उसमें पूज्य श्रीमोटा के हृदय के समभाव का कोई भी पाठक अनुभव कर सकता है । स्त्री को अपना गौरव किस तरह संभाले । पति की मृत्यु के पश्चात् व्यवहार करते हुए कैसी सावधानी रखे, संसार-व्यवहार के लिए आवश्यक साधन-सम्पत्ति तथा शक्ति किस तरह बढ़ावें और उसका किस तरह उपयोग करें उसे समझाया है । इसके द्वारा पूज्य श्रीमोटा व्यवहार का किस तरह समुचित आदर करते हैं, इसे समझा जा सकता है ।

पूज्य श्रीमोटा परम **पद** को प्राप्त हुए और ऊर्ध्व जीवन की समग्रता का, व्यापकता का आपश्री का निरन्तर बढ़ता गहन अनुभव पत्रों द्वारा हमारे तक पहुँचता है, यह घटना अपूर्व है । संसार में रहकर वे संसार तर गये । आपश्री ने संसार का हार्द सभी के कल्याण के लिए व्यक्त किया है । आपश्री ने शादी की थी पर यह घटना साधनामय जीवन को चुनौती रूप थी, इसे ध्यान में रखना चाहिए । जीवदशा की सभी स्थितियों तथा उसकी तीव्रता का आपश्री ने अनुभव किये हैं, पर भोग नहीं किये, पर प्रभुमय जीवन के लिए ये सारी वृत्ति शक्ति को आयोजित

किया है । फलस्वरूप संसारी भावों की गलीकूचे - भूलभूलैया को वे जानते हैं । इससे दम्पति के सर्व व्यवहारों के तमाम परिणामों को आपश्री प्रकाशित करते हैं ।

पूज्य श्रीमोटाने विवाहित जीवन को जिस तरह मूल्यांकन किया है और उसकी भावना का विनियोग करने हेतु जिस तरह अवतरण किया है, ऐसा शायद भाग्य से ही किसी मुक्तात्मा ने किया होगा । **चेतन मोटा** का व्यावहारिक भूमिका पर अवतरण और जीवमात्र को प्रकृति द्वारा उनका प्रवेश और गूढ़ सक्रियता; यह तो सचमुच अजब का विषय है । तब भी किसी के मानने में न आये ऐसी यह एक बहुत ही तथ्यपूर्ण वास्तविकता है ।

एक हरिजन युवक (श्री मुकुल कलार्थी) और वणिक युवती (निरंजनाबहन) का प्रेमविवाह करवा देने के लिए श्रीमोटा ने पुरोहित का स्थान शोभित किया था । उस निमित्त से आपश्री ने विवाह की भावना को व्यवहार में किस तरह लावें उसकी विधि-क्रिया गुजराती भाषा में रची। पूज्य श्रीमोटा रचित 'विवाहविधि' यह 'उत्क्रान्त जीवन के लिए व्यावहारिका' है, विवाहजीवन विषयक पुस्तक प्रकाशित हो रही है, अतः उस विधि विषयक लिखना मुझे उपयुक्त लगता है । इस पुस्तक में पीछे के पृष्ठों में यह विधि परिशिष्ट रूप में रखी गई है । हरिः ॐ आश्रम सुरत-नडियाद में आपश्री ने बहुतों को इस विधि

द्वारा विवाहित जीवन में प्रवेश दिलवाया है । पूज्य श्रीमोटा के देहत्याग पश्चात् भी इस विधि अनुसार हरि:ॐ आश्रम में तथा अन्य स्थानों पर कुटुंबगत तथा सामूहिक विवाह भी करवाये जाते हैं ।

इस विधि की व्यवस्था द्वारा पूज्य श्रीमोटा ने हमारे समाज-व्यवहार के मूल्यों को ऊँचा उठाया है । इस विधि में वर और कन्या के माता-पिता शामिल होते हैं । इस तरह संसार का यह व्यवहार संबंध समानता की भूमिका पर आता है । वर या कन्या के माता-पिता में से किसी एक की उपस्थिति न हो तो भी विधुर पिता या विधवा माता इस विधि में शामिल होते हैं और विधि प्रसंग में माता-पिता तथा वर-कन्या के साथ ही यज्ञ में आहुति देते हैं । कुटुंब की एकता-मेल के लिए ऐसे सहकार्य की भूमिका बहुत काम करती है ।

इसके अलावा, दोनों पक्ष के संबंधी भी इस विवाह-प्रसंग को पूरे गौरव और आनंद से मनावें । इसके लिए श्रीमोटा ने सभी को एक साथ इस विधि का गान करने की पद्धति अपनायी है । हमारी शास्त्रीय विधि में निमंत्रितों तथा अन्य के आवागमन से तथा लौकिक व्यवहार को महत्त्व दिये जाने पर विवाह-विधि की पवित्र भावना पर किसी के मन, बुद्धि केन्द्रित नहीं होते । जबकि पूज्य श्रीमोटा प्रेरित इस विधि में सभी के शामिल होने से सभी

को विवाहोत्सव में भाग लेने का आनंद होता है । यह विधि गुजराती भाषा में की जाती है, अतः विवाहजीवन का महत्त्व और उसकी भावना और व्यवहार का मार्गदर्शन पा सकते हैं । पूज्य श्रीमोटा द्वारा अपनाई गई, यह एक उत्क्रान्त पद्धति है ।

विवाहविधि प्रसंग की सामग्री तो भावना को समझने के लिए प्रतीक रूप है । इससे पूज्य श्रीमोटा ने इन प्रतीकों के पीछे रही भावना समझायी है । यज्ञकुंड है चार दिशाएँ तथा चार कोने सूचित करता है । उसके बाहर दिखाई देती सीढियाँ त्रिगुणात्मक प्रकृति की सूचक हैं और यज्ञकुंड की गहराई यह जीवन की गूढ़ता और गहनता दर्शाती है । इसमें प्रज्वलित अग्नि यह ज्ञान (प्रकाश) और गरमी (शक्ति) के द्योतक हैं । यह प्रत्यक्ष देव है । ज्ञान और शक्ति बिना का जीवन, जीवन नहीं है, इसीलिए इन अग्नि की ज्वालाओं को ऊपर उठाने के लिए इसमें जिन द्रव्यों की आहुति दी जाती है, ये जीवदशा के विचार, वृत्ति, भावों की होती है । तिल, जव और घी ये इनके प्रतीक हैं ।

कुंकुम और चावल का तो अद्‌भुत महत्त्व है। चूना और हल्दी के मिश्रण से कुंकुम बनता है । चूने के गुणधर्म प्रसिद्ध हैं । वह जलाये, इतना तेज़ है; फिर इतना ही जले हुए को शान्ति देनेवाला भी है । हड्डियों को मज़बूत करने

का काम भी कर सकता है । हल्दी रक्त को शुद्ध करने का काम करती है । इन दोनों के मिश्रण से लाल रंग का कुंकुम होता है । इसका रंग रक्त जैसा है । रक्त का भ्रमण हमारे खुराक में से अशुद्धिओं को बाहर फेंक देता है, इसलिए उत्तम के स्वीकार के लिए त्याग करने का सहज गुण रक्त में है । कुंकुम द्वारा ऐसा त्याग सूचित होता है । उसके ऊपर लगाये जानेवाले चावल ये पुरुषार्थ के प्रतीक हैं । चावल शरीर को पुष्ट और बलवान बनानेवाला अनाज है । इससे प्राप्त शक्ति से पुरुषार्थ प्रेरित करना है । त्याग की भूमिका पर पुरुषार्थ हो तो ही एक दूसरे दीप्तमान होंगे। इसीलिए हमारी संस्कृति में प्रत्येक शुभकार्य में कुमकुम-तिलक को महत्त्व दिया गया है ।

पूज्य श्रीमोटा ने मौली (मांगलिक लाल डोरा) के पीछे की भावना समझाते कहा है - यह स्नेह का प्रतीक है । इसकी कोमलता इतनी है कि टूटे नहीं इसके लिए खूब सावधान रहना है । जीवन में विघ्न, कठिनाई, उलझन, पहेलियाँ आएँगी, उस समय मुलायम रहने से क्लेश, कलह बढ़ने से रुक जाएगा । ऐसे कच्चे सूत के तार से पति-पत्नी बंधते हैं । मौली वर-कन्या तथा माता-पिता परस्पर को बांधते हैं । इससे सभी स्नेह में परस्पर दृढ़ रहें यह इंगित हुआ है । पूज्य श्रीमोटा कहते थे कि संसार में क्लेश, कलह से जीना यह तो भयंकर है । इसके निवारण

के लिए एक दूसरे पर विश्वास होना ही चाहिए । ऐसा न हो तो जीवन में आनंद नहीं ।

पूज्य श्रीमोटा प्रणीत इस विवाहविधि के पूर्व 'ग्रह शान्ति' की विधि है । हमारे शास्त्रीय कर्मकांड में 'ग्रहों' की शान्ति के लिए यह विधि रखी है । पूज्य श्रीमोटा आत्मानुभवी पुरुष हैं । इससे उनके दर्शन में ग्रहदशा तो जीवदशा की भूमिका पर है । पर जीवात्मा आत्मशक्ति, दृढ़ संकल्प और उत्कट पुरुषार्थ द्वारा आत्मदशा अनुभव करने के लिए आया हैं । इससे विवाहित जीवन प्रारंभ करने से पूर्व 'ग्रहशांति' की संकल्प विधि आपश्री ने प्रेरित की है । घर में शान्ति; प्रसन्नता किस तरह बनी रहे, उसके व्यावहारिक तरीक़े आपश्री ने बतलाए हैं । नारियल जीवदशा का प्रतीक होने से उसका समर्पण यज्ञकुंड की ज्ञानाग्नि में करने की विधि है ।

विवाहविधि में कन्यादान की परम्परागत भावना को पूज्य श्रीमोटा ने गौरवरूप प्रदान किया है । कन्या यह माता-पिता की सम्पत्ति नहीं, उनका उस पर स्वामित्व नहीं है । इससे कन्या का दान करने की भावना इस युग में स्वीकार्य नहीं बनती । पूज्य श्रीमोटाने कन्या के मातापिता के उद्‌बोधन में कहलवाया है -

'स्वयं का अंग जान कर जिसे पालन किया सदा,
वह पुत्री भाव से आज विवाह-यज्ञ में समर्पिता ।'

इसमें कन्या के मातापिता 'स्वयं की' पुत्री ऐसे शब्द का उच्चारण नहीं करते यह सूचक है, तब भी स्वयं का 'अंग' इस शब्द द्वारा भाव सूचित करते हैं । पुत्री का स्वयं समर्पण करते हैं, ऐसी रचना इस श्लोक में नहीं, पर पुत्री 'समर्पिता' है । उसके प्रति अपने भाव माता-पिता व्यक्त करते हैं । 'जीवन के लिए उत्क्रांति हेतु यह विवाह है' ऐसा आपश्री ने माता-पिता के पास कहलवाया है ।

इस विधि के पश्चात् पूज्य श्रीमोटा की उपस्थिति में वर-कन्या एक दूसरे को फूलहार पहनाते हैं । इसके द्वारा वैवाहिक जीवन को पुष्पों जैसा कोमल, स्वीकारात्मक और सुगंधित बनाने के एक दूसरे के संकल्प को दोनों उमंग से फलित करने को प्रयत्नशील रहेंगे ऐसा संकेत स्पष्ट किया है । इसके पश्चात् अग्नि को साक्षी रखकर, प्रेमभाव से आचरण करने दिल से एक बनकर रहने के लिए चौदह आहुतियाँ दी जाती हैं । इस प्रत्येक आहुति द्वारा पूज्य श्रीमोटा ने उत्क्रान्त जीवन की चौदह भूमिका बतलायी हैं । इसकी दसवीं कड़ी में समता के अनुभव के लिए गान है,

'सुख और दुःख और शोक हर्षादि आदि वृत्तियाँ,
ज्ञात समभाव से वह, मिलकर इस जीवन में ।'

पूज्य श्रीमोटा द्वारा बतलाई गईं चौदह भूमिकाओं का आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है । जब ऐसी जीवन भावना स्पष्ट हो, उसके बाद उस भावना को चरितार्थ करने

उसके अनुसार आचरण करने व्रत लेना होता है । इसके लिए वर-कन्या का हस्तमिलाप होता है । दोनों एक दूसरे का दायाँ हाथ पकड़कर जीवन का व्रत लेते हैं । उसमें पहले की भावनानुसार किस तरह व्यवहार करेंगे, इसे बतलाया है । पूज्य श्रीमोटा की गहरी व्यावहारिक दृष्टि इसमें प्रकट हुई है ।

इनमें दूसरी-तीसरी कड़ी का मर्म ध्यान में लेने जैसा है ।

'विचारों का बलात्कार हम एकदूसरे पर,
कर न सकें ऐसी जागृति रखें हृदय में ।
वृत्ति जो मालिकी की हम एकदूसरे पर,
भोग सकें ऐसी हो न कभी सचमुच ॥'

पति-पत्नी दोनों की प्रकृति अनुसार कार्यक्षेत्र तथा कार्यपद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हैं । इससे कुटुंब की वृद्धि, उसका भरणपोषण, लक्ष्मी की वृद्धि आदि किस तरह करें उसका मार्गदर्शन आपश्री ने दिया है । पूज्य श्रीमोटा ने सप्तपदी की भावना इस तरह समझायी हैं । पति-पत्नी जीवन में परस्पर सख्य मैत्री किस तरह बनाये रखें उसकी यह आचारसंहिता है ।

ऐसी मैत्री दृढ़ करने मंगलफेरे हैं । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ सूचित करनेवाले चार फेरों में धर्म, अर्थ, काम साधने के लिए **प्रकृति** को

आगे रखनी पड़ती है । मोक्ष के लिए **पुरुष** यानी आत्मा आगे आती है । **प्रकृति** पीछे रहती है । इसलिए चौथे फेरे के समय वर रूपी पुरुष और स्त्री रूप प्रकृति आगे-पीछे आ जाते हैं ।

इसप्रकार विवाह-विधि पूर्ण होने पर बजुर्ग नव वर-वधू को मांगल्य भावना का अष्टक गाते हैं । पूज्य श्रीमोटा रचित यह मंगलाष्टक तो जीव, जगत और ईश्वर की रहस्यमयता को व्यक्त करनेवाला है । यह मंगलाष्टक तो मननीय-चिंतनीय है । आपश्री द्वारा रचित दूसरे एक मंगलाष्टक के चरण से 'विवाह हो मंगलम्' पुस्तक का नाम रखा है ।

विवाह-विधि पूर्ण होने पर पूज्य श्रीमोटा को प्रणाम करनेवाले नवदंपति को आपश्री कहते कि स्त्री को गुलाम न समझना और वधू को कहते कि पति को जीवन में प्रेरणा, उत्साह, सावधानी बढ़े वैसा आचरण करना है । हठ और ईर्ष्या से उसकी प्रगति अटकती है । पूज्य श्रीमोटा के ऐसे उद्‌गारों से वहाँ उपस्थित रहनेवाले सभी के हृदय आर्द्र हो उठते ।

जीवन मांगल्य-भावनापूर्वक जीने के पुरुषार्थ में निहित है । पूज्य श्रीमोटा का यह 'विवाह हो मंगलम्' केवल नवदंपत्ति को ही नहीं पर सर्व दंपतियों के जीवन में प्रकाश प्रेरक है । इसमें पूज्य श्रीमोटा ने परम आदर्श को

चरितार्थ करने की व्यावहारिक दीक्षा दी है ।

इस पुस्तक में पूज्य श्रीमोटा द्वारा लिखे पत्रों का प्रश्नोत्तर रूप संपादित किया है । तथापि कितने ही विशिष्ट प्रसंग संदर्भ में पत्रों को उसी रूप में रखा गया है ।

'पूज्य श्रीमोटा की दाम्पत्य भावना' (१९८०) तथा 'विवाह हो मंगलम्' का संपादन करते हुए मेरे दिल में बहुत आनंद और उत्साह का मैंने अनुभव किया है । इसका कारण तो **चेतन मोटा** की वाणी है । सर्व पाठक जीवन का प्रसाद प्राप्त करेंगे ऐसी श्रद्धा है ।

इस कार्य द्वारा पूज्य श्रीमोटा ने सत्संग का अवसर देने के लिए हरि:ॐ आश्रम के सर्व कार्यकर्ताओं का मैं हृदयपूर्वक आभार मानता हूँ ।

'संतस्मृति' १, स्टेट बैंक ओफ इन्डिया – **रमेश म. भट्ट**
ओफिसर्स सोसायटी, नारायणनगर,
अहमदाबाद – ३८०००७

॥ हरिः ॐ ॥

निवेदन

(प्रथम संस्करण)

संसारी जीवो के लिए गृहस्थी-जीवन बहुत महत्त्वपूर्ण है । गृहस्थ-जीवन में विविध प्रकार की जिम्मेदारी निभानी पडती है। गृहस्थ-जीवन में ही परिवार की प्रगति और बालकों के भविष्य का निर्माण होता हैं ।

पूज्य श्रीमोटाने जिज्ञासु साधकों को शांतिपूर्ण, सुखदायी भगवदीय गृहस्थ-जीवन जीने के लिए इस पुस्तक में ठोस मार्गदर्शन दिया गया है, जो विवाह के बंधन में जुड़े हुए सभी जीवों के लिए अंधेरे में उदय होनेवाले सूर्य के समान है । जिज्ञासु साधक इसका ध्यानपूर्ण, शांति से अभ्यास करें और प्रत्यक्ष प्रयोग में लायेंगे तो अपना दांपत्य-जीवन सफलतापूर्वक जी सकेंगे ।

पिछले कुछ वर्षों से बिनगुजराती साधकों अधिक मात्रा में मौनमंदिर का लाभ लेने लगे हैं । वे साधक पूज्य श्रीमोटा के अनूठे आध्यात्मिक साहित्य से वंचित न रह जाय, इस लिए हमारे ट्रस्टीमंडल के सदस्य श्री रजनीभाई बर्मावाला (जिन्होंने इस हिंदी संस्करण का संपादन एवं मुद्रणशुद्धि का कार्य भी संभाला है) ने हिंदी और अंग्रेजी भाषा में प्रकाशन करने का प्रस्ताव किया था। इसके फलस्वरूप यह पुस्तक आपके करकमल में आया है ।

इस पुस्तक का मुद्रणकार्य मे. साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि. अमदाबाद के श्री श्रेयसभाई पंड्याने पूज्य श्रीमोटा को अपनी भक्ति को व्यक्त करते सेवाभाव से निःशुल्क कर दिया है, उसके लिए हम उनके बहुत बहुत आभारी है ।

दिनांक : २८-१-२०१२ **ट्रस्टीमंडल**

वसंतपंचमी हरिः ॐ आश्रम, सुरत

अनुक्रमणिका

विवाह	१	'वर' अर्थात् क्या ?	६८
स्त्रियों में भावना	१३	नामस्मरण से प्रेम	६९
प्रेम यानी गुलामी ?	१५	वासना के आक्रमण	७०
मातृमहिमा	१८	उचित उपयोग	७२
विरह	२०	वृत्तिओं के प्रति सावधानी	७३
स्त्रियों के प्रति अभिगम	२३	संयम या संतति नियमन	९३
विवाहित साधकों को	२९	स्वामी के साथ प्रेम	९६
कृपा स्वीकार करने का उपाय	३४	सुमेल साधना	९८
भूमिका का महत्त्व	३६	मुक्तात्मा का स्पर्श	९९
पैसों का उपयोग	३९	सुमेल न जागे तो	१०२
मोटा प्रेरित सुमेल साधना	४०	ज्ञानपूर्वक दुःख	१०३
मूल अपने में	४१	सच्चा संबंध	१०४
बालक के संस्कार	४१	परस्पर की बाधा	१०६
गायत्री-मंत्र	४२	पति-पत्नी का व्यवहार	१०७
जन्म-मरण में साथी-'**मोटा**'	४२	पति-पत्नी के बीच विघ्न	१०८
अनुष्ठान	४४	पति-पत्नी के बीच पूर्वग्रह	१०८
यह संसार तपोभूमि	४६	प्रणयत्रिकोण	११३
मुक्तात्मा का असामयिक प्रवेश	५०	सच्चा पति	१२७
आचार-विचार	५२	मौन-एकांत की विशिष्ट विधि	१२९
भावनाभरा जीवन	५३	कृपा का कार्य	१३१
'जीव' की लाचारी	५४	'गुरु' की चेतना	१३३
स्वयं का ही ख़याल	५५	संग्राम : पत्नी और नौकरी	१३४
अलग रहना	५६	विषयभोग की सापेक्षता	१३५
सच्ची मानवता	५८	विषयभोग का उद्देश्य	१३७
मोटा के विषय में अन्यथा विचार	५९	बालकों में संस्कार	१३९
सच्ची रक्षा	६१	बालकों को खेलाते हुए 'सावधानी'	१४०
मौन-एकांत के समय	६५	शिक्षिका का व्यवहार	१४१
सभानता की कौंध	६७	हरिःॐ आश्रम में प्रभुभाव	१४१
रुचि न जागने का कारण	६८	नयी अवस्था का धर्म	१४२

मुक्त की शरीरदशा	१४३	पढ़ने से लाभ	१६१
व्यवहारकला	१४३	दुःख को गाया नहीं जाता	१६२
परार्थ भोग	१४४	हानिकारक इच्छा	१६३
आचरण से शोभा	१४५	वृत्ति का उपयोग	१६४
ठोस व्यवहार दृष्टि	१४६	शरीर के लिए पैसा	१६५
कायरता को लानत	१४६	शरीर की मर्यादा	१६६
शरीर की देखभाल	१४७	जन्मजन्मान्तर के साथी	१६६
पुनर्जन्म !	१४८	मन की लाक्षणिकता	१६७
मुक्त के स्पर्श का दृष्टान्त	१४८	विवेकव्यवहार	१६८
'मोटा' में विभुत्व	१४९	विधवा का व्यवहार	१६८
सदा का साथी	१५०	विधवा की स्थिति	१७०
प्रेम से प्रतिकार	१५१	भटके हुए को प्रेम	१७२
औषध की आवश्यकता	१५२	बलात्कार हुआ तो भी क्या ?	१८३
स्मरण का सहारा	१५२	ऐक्य-अभेद	१८५
मोटा का प्रेम	१५३	अभेद रूप	१८५
हरि पर भरोसा	१५३	मुक्तात्मा का दर्शन	१८६
स्वजन के स्मरण का उपयोग	१५४	प्रभुभाव में रूख लेना	१८७
स्वयं का उदाहरण	१५४	मौन में उपस्थित मोटा	१८८
चेतनानिष्ठ में चेतना	१५५	हमारे सुख-दुःख	१९०
गुरु के अखण्ड स्मरण की पद्धति	१५६	प्रभु-स्मरण के साथ सजगता	१९२
'जीव' के कल्याण हेतु	१५७	गुरुमंत्र	१९४
जन्म-जन्मान्तर का साथ	१५८	सच्चा आश्रम	१९५
छुट्टी का सदुपयोग	१५९	रूपान्तर की गूढ़ कला	१९८
साकार-निराकार	१५९	गुरूमंत्र का उपयोग	२००
मुक्त के मिलन का उद्देश्य	१६०	नामस्मरण और हृदयस्थ गुरु	२०३

नवदंपति को

(शार्दूलविक्रीड़ित)

दोनों एक दूसरे के हेतु जीव को होमें चाहो भले,
दोनों एक दूसरे के साथ रह वेग से पथ पर बढ़ें;
दोनों एक दूसरे के विषय में एकात्मभाव चाहकर हृदय में,
ऐसी जो कुछ भी करो कमायी सर्व अर्पित करो प्रभुपादश्री में ।

विवाह से द्वन्द्व मिटाने जीवन में एकत्व भाव द्वारा,
बहो प्रेम की विशुद्ध हृदय से करुणा भरी धारा;
अन्योन्य ही की हो शीतल छाया सदा जीवन में,
अर्पो हे प्रभु, युग्म को आशिष भावभरी हृदय में ।

– **मोटा**

विवाह हो मंगलम्

❑

– पूज्य श्रीमोटा

''मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ ।''

- मोटा

१. विवाह

स्वजन : मोटा, मनुष्य के जीवन में अनेक घटनाएँ घटती ही रहती हैं । इनमें विवाह जीवन के प्रवाह के मध्य बनती एक महान घटना है । हमारे हिन्दू धर्म ने इसे विशेष गौरवमय माना है । विवाह के मर्म विषयक अनेक भिन्न भिन्न विचारकों ने चिन्तन भी किया है; पर उच्च और सुखी जीवन जीने के लिए विवाह संस्कार के पीछे कौन-सी भावना सबसे अधिक उपकारक है ?

श्रीमोटा : हिन्दू धर्म में रही युग्म भावना का विशुद्ध अर्थ, उसका उद्देश्य, महत्त्व उसमें निहीत यथार्थ दृष्टिबिन्दु से हमारा हिन्दू समाज शायद ही समझ सका हो । दो भिन्न भिन्न लगते जीवों के युग्म की भावना-अविच्छिन्न जीवों का मिलन-अहेतुक हो यह कभी भी संभव नहीं है । इन दोनों जीवों का संबंध अनेक जन्म-जन्मान्तरों में किसी न किसी ढंग से चलता ही रहता है । अतः ऐसे संबंधों में हृदय की निकटता जितनी शुद्ध भावना से विकसित होती जाय, उतने ही अनुपात में दोनों का संबंध भी विशुद्ध होता जाएगा । यह जो कुछ भी होता दिखाई दे रहा है, वह उस संबंध के कारण ही है । संबंध के बिना कुछ भी हो यह संभव नहीं है । इसलिए एक बार विवाह-बंधन में बंधे दो जीवों का संबंध कभी भी नहीं छूट सकता । वह संबंध किसी न किसी रूप में एक दूसरे के साथ बना ही रहता

है और वह विवाह-संबंध भी उन जीवों के पारस्परिक संबंधों के प्रमाण में किसी न किसी रूप में यहाँ वहाँ घटित टकराव का ही परिणाम होता है ।

स्वजन : आप तो इस उत्तर में बहुत ही गहन वात इंगित कर रहे हैं । 'विवाह' स्वयं ही जीवन के लिए एक आवश्यक और अनिवार्य घटना बनती है । विवाह यदि किसी रहस्यमय टकराव का परिणाम है तो ऐसा जीवन भी टकराहटवाला बनेगा न ?

श्रीमोटा : यहाँ अधिक सावधानी रखते हुए युग्म की भावना को समझना है । क्योंकि जीवन सबसे महत्त्वपूर्ण है । जगत में कठिनाई के बिना कुछ भी प्राप्त हो सकता है ? व्यापार हो, राजनीति हो या फिर जीवन के किसी भी क्षेत्र में कठिनाई के बिना कुछ भी प्राप्त हुआ हो ऐसा लगता ही नहीं । तो फिर जीवन का तत्त्व पाने के लिए कठनाई सहना मानव को क्यों कठिन लगता होगा ? जीव के जीव-स्वभाव की डोरी को जितनी ढील दिया करेंगे उतनी डोरी वह खींचते ही जाएगा । जीवन के जोश में जैसे पतंग डोरी खाया ही करती है, वैसे ही जीव-स्वभाव का समझना चाहिए । फिर भी मानव को जीवदशा प्राप्त हुई है, इससे अनेक संघर्षों से गुजरकर अन्ततः वह जीवन को उच्च बनाने का ध्येय ही रहा है । ऐसे जीवनआदर्श की सिद्धि के लिए युग्म की भावना यह आवश्यक भावना है ।

स्वजन : मोटा, आपने तो जीवन के वास्तविक संघर्षों का उच्च हेतु भी बताया । जीवन की जो स्वाभाविक गति है, उसे ऐसे आदर्श में बदलना, जीवन के संघर्षों को तपस्या के रूप में स्वीकार करना पड़े और वह तपस्या, आपने बतलाई उस युग्म भावना को टिकाये रखने के लिए करनी ही पड़ेगी ऐसा ही न?

श्रीमोटा : हाँ, क्योंकि उस भावना में व्यक्ति तथा समाज दोनों का विकास होने के लिए बना है । सच बात यह है कि विवाह की भावना केवल भोगविलास के लिए नहीं है, यह तो तपस्या के लिए ही है । समाज, देश, पितृऋण और देव का ऋण अदा करने के लिए ही यह भव्य, दिव्य साधन है । समाज की उत्तम से उत्तम सेवा मानव युग्म द्वारा ही कर सकता है । हृदय की शुद्ध सात्त्विक भावना विकसित कर, आत्मा के स्वरूप में एक दूसरे को पहचानकर ही युग्म जगत के चरणों में एकाद बुद्ध भगवान, एकाद ईशु भगवान, एकाद शंकराचार्य प्रभु, एकाद रमण महर्षि, एकाद पूर्णयोगी श्रीअरविंद, एकाद स्वामी रामदास या एकाद भव्य दिव्य आत्मा या एकाद महात्मा गाँधी की भेंट धरेगा तो ही जगत की अधिक से अधिक सेवा कर पाएगा । ऐसी प्रजोत्पत्ति के लिए विवाह है ।

स्वजन : विवाह के इस भव्य आदर्श को समझ तो सकते हैं पर...

श्रीमोटा : तुम्हारा कहना मैं समझ सकता हूँ, पर हम से जीवन में ऐसा नहीं हो सकता । इसलिए जीव-स्वभाव में बहते जाना यह तो हमारी अपनी कमज़ोरी है । ऐसी इस कमज़ोरी को कमज़ोरी के रूप में समझकर, हमारे से संभव हो उतना संघर्ष ऊपर उठने के लिए करें यह हमारा धर्म है । तुम्हीं ने अभी कहा, 'यह आदर्श तो समझ में आता है ।' इसीलिए कहता हूँ कि भगवान ने हमें समझ और शक्ति दी होती है, तब भी हम ऐसा कहें, 'नहीं, भाई, हम से ऐसा सब कर पाना संभव नहीं है,' यह हमें शोभा नहीं देता । मानव को तो प्रत्येक परिस्थिति में संघर्षशील ही रहना चाहिए । फिर भले ही प्रत्येक जीव अपनी शक्ति अनुसार मंथन करे । ऐसी मंथन करने की वृत्ति में सभी को प्रोत्साहन, प्रेरणा, बल, हिंमत, सहानुभूति, साथ और ऊष्मा देते जाना, प्रत्येक समझदार और ज्ञानवान मनुष्य का धर्म भी है ।

कोई भी समझदार व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को जीवस्वभाव में खींचकर ले जाय तो वह विवेक में चूक करता है, ऐसा मानना चाहिए । क्योंकि ऐसा करने में हम मात्र तत्काल के लाभ को ही देखते हैं ।

स्वजन : तो **मोटा**, ऐसा दर्शन विवाहित-जीवन जीने के लिए रूढ़ जीवनपद्धति का भोग देना पड़ता है ।

श्रीमोटा : हाँ, विवाहसंबंध से हम समाज के जीवन

के साथ हिस्सा लेते हैं । मनुष्य के संबंधों और भावना यह तो विवाहजीवन से विकसित होती जाती स्थिति पर से बंधते जाते है ।

देखो भाई ! हम इस जगत से जो कुछ भी प्राप्त करते हैं, वह जीवन देकर ही प्राप्त करते हैं । धन-दौलत, मान-सम्मान, कीर्ति, धन-संपत्ति, कुछ भी हो, उसे प्राप्त करने के लिए जीवन का भोग देना ही पड़ता है । पर हमारे जीव-स्वभाव को रुचिकर होने से हम कुछ भी भोग दे रहे हैं, इसकी जागृत चेतना हममें नहीं रहती है । किन्तु सच्चा और उन्नत जीवन प्राप्त करने के लिए हममें भोग देने की सभानता जागती है, क्योंकि उसमें हमें जीवस्वभाव से उल्टी गंगा में बहना होता है । परंतु सच्चा पुरुषार्थ तो उसी में रहा है ।

स्वजन : किन्तु **मोटा,** निर्बलता का संपूर्ण स्वीकार करके ऐसा कहें कि ऐसा पुरुषार्थ न हो पाये तो...?

श्रीमोटा : यदि हम से जीवस्वभाव से ऊँची दिशा में गतिशील होने का पुरुषार्थ न हो सके तो जो भी ऐसा पुरुषार्थ करता हो तो उसे सहानुभूति दें, ऊष्मा दें, प्रेरणा दें, उस जीव के प्रति अत्यन्त प्रेमभावना रखनी चाहिए । इतना भी यदि किया जा सके तो सद्भावना विकसित होती जाएगी । ऐसा करने से हमें दिनप्रतिदिन अपनी स्वयं की कमज़ोरी का अहसास अधिक से अधिक होता जाएगा

और ऐसे तीव्रतर चेतना से हम में शक्ति एक दिन अवश्य प्रगट होगी । पर जो जीव इतना भी नहीं कर सकता और स्वयं के जीवस्वभाव में रचा रहे और जीवस्वभाव की प्रवृत्ति में डूबा रहा करता है, ऐसा जीव कभी भी अपने मन से निश्चिंतवाली शान्ति अनुभव कर सकेगा ही नहीं । ऐसे के भाग्य में तो अशान्ति ही लिखी है । उसे अशान्ति ही रहेगी । संसार के सभी सुख-साधन होने पर भी वे साधन उसके लिए सुख के साधन हो नहीं पाएँगे । फलतः सुख और शान्ति प्राप्त करने के लिए ऐसे व्यक्ति जीवन में यहाँ से वहाँ भटकने ही वाला है ।

स्वजन : मोटा, आपने तो एक ठोस सत्य बात की है । जीवन में सुख-शान्ति के लिए भी विवाह की भावना को चरितार्थ करने के लिए मथना ही रहा । आपकी दृष्टि से युग्म भावना का उच्चतम आदर्श क्या है ?

श्रीमोटा : प्रकृति की पृष्ठभूमि में सत्ताधीश या प्रकृति के सारे कर्मों के पीछे मुहर मारनेवाले परमपुरुष को जानना, समझना और अनुभव करने और उससे परे भी जो कुछ हक़ीक़त के रूप में सत्य निहीत है, उसका साक्षात्कार करने के लिए युग्म की भावना है ।

स्वजन : यानी कि हमारे जीवस्वभाव को संचालित करनेवाले परमतत्त्व को सबसे पहले तो जानना चाहिए । फिर उसका चिंतन-मनन करके उसकी शक्ति और सत्ता

को समझना चाहिए । फिर जाने हुए और समझे हुए शक्तितत्त्व का अनुभव करना चाहिए और फिर भी उन सबसे पर हक़ीक़त के रूप में जो सत्य एक रूप है, उसका साक्षात्कार होना चाहिए । इसीलिए युग्म की यह भावना है ।

श्रीमोटा : मैंने तुम्हें युग्म की भावना का अंतिम लक्ष्य क्या है, वह कहा, वह तुम्हें स्पष्ट समझ में आ गया है । उस उद्देश्य का तुमने पुनरावर्तन किया, वह ठीक किया, पुनरावर्तन से समझ दृढ़ होगी । मैं तुम्हें अभी आगे बात कहूँ । दो जीव एक हों-एक बनें-ऐसी प्रक्रिया के कारण ही सृष्टि में यह समाज है । ऐसे इस समाज को उच्चतर भूमिका में ले जाने के लिए विवाह की भावना है । स्वयं के साथ जुड़े जीव की यदि कोई जीव अवगणना करता है तो वह समाज की भी अवगणना करता है । ऐसे जीवों के द्वारा लाखों के दान-धर्मादा वृथा हैं । यह सारा एक प्रकार का ढकोसला है, इसमें कुछ दम नहीं । ऐसे दान से समाज की भावना कभी भी नहीं खिल सकती । शायद स्थूल दृष्टि से समाज का कुछ चलता रहे सही । पर विवाह की जो उच्च भावना है, उसमें से ही दान का सही भाव पोषित होता जाता है, ऐसी उच्च भावना के साथ जीवन जीने से उच्च संस्कृति या संस्कार प्राप्त होते रहते हैं ।

जमीन में वृक्ष के बीज का विवाह (जुड़ना) होता है और कृपा रूपी जल उस पर पड़ते ही उसमें से जीवन अंकुरित होता है । वैसे ही विवाह होने के बाद भावनात्मक ढंग से जीने से अर्थात् एकराग-एक भावमय बने रहने की उच्च जीवनस्थिति एकमय होने की स्थिति—खिल उठती है ।

स्वजन : विवाह के पश्चात् आदर्श-संवादी जीवन के लिए दोनों के जीवन समान कक्षा के तो होने ही चाहिए न ?

श्रीमोटा : यहाँ पर ही तुम्हारी भूल हो रही है । किसी गूढ़ कर्मबल द्वारा दो जीव विवाह-संबंध से जुड़ते हैं । उन्हें उच्च जीवन के लिए विवाहभावना को ध्यान में रखकर जीने का पुरुषार्थ करना है ।

भले ही वे दो जीव एक समान कक्षा के न हों तो इससे क्या होता है ? क्या उसे अपनी हार क़बूल करनी चाहिए ? ऐसा करने पर तो वह अधिक कमज़ोरी मोल लेगा । कमज़ोरी का सामना कमज़ोरी बढ़ाकर नहीं हो सकता, किन्तु अधिक सबल होकर हो सकता है । मनुष्य को यदि जीवन का विकास करना हो तो उसे प्रत्येक परिस्थिति में जीत प्राप्त करनी ही होगी और उसमें से ही प्राणवान शक्ति पैदा करनी है ।

शक्ति भी उसके संबंध के बिना प्रगट नहीं होती है । ऐसी शक्ति को मनुष्य स्वयं अकेला भी प्राप्त तो कर

सकता है; तब भी उसे ऐसी शक्ति पैदा करने के लिए किसी के साथ जुड़ना-विवाह तो करना ही पड़ता है, यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण गूढ़ बात है । अर्थात् 'विवाह के बिना कुछ भी संभव नहीं है । इस समग्र कथन को भावनात्मक रूप से समझना है । इसीलिए विवाह की उत्तम भावना का विच्छेद होना, कभी भी संभव नहीं है, क्योंकि उसके पीछे तो कर्मसंबंध निहित है ।

संसार में जो भी शक्ति जहाँ-जहाँ व्यक्त रूप में दिखाई देती है, वह सारी शक्ति विवाह से जन्मी होती है । इसलिए जीव के साथ का विवाह संबंधवाला भाव किसी न किसी रूप में मिलने ही वाला है । अतः जीवस्वभाव से प्रवाहित होकर वैसी भावना को अयोग्य रूप से बह जाने देना; यह जिनमें बुद्धि है, समझ है, धर्म की कुछ भावना है, ऐसे व्यक्ति का काम नहीं । इस ढंग से प्रवाहित हो जाने से प्रत्यक्ष रूप से पहले तो सुख-रस मिलता है ऐसा मानेंगे । अंत में तो वह उसे विष जैसा ही लगनेवाला है ।

स्वजन : इस से तो ऐसा समझ में आता है कि विवाहित जीवन के चिरंजीव सुखानंद के अनुभव के लिए प्रत्येक को भावनात्मक जीवन जीने के लिए संघर्ष करना चाहिए, पर संघर्ष करने सभी जीव क्या इस जीवन में ऐसे उच्च जीवन का अखण्ड आनंद पा सकते हैं सही ?

श्रीमोटा : प्रत्येक जीव में शिव बनने की शक्ति विद्यमान है ही । प्रत्येक जीव शिव हो सकता है । ऐसा आत्मविश्वास अपने में जागने दो । ऐसा शिवपन यदि प्रत्येक जीव में न हो तो हमारा **जीव** कोटि में अवतार न हो सका होता । प्रकृति की इस शक्ति के साथ हम कल्याणमय - शिव रूप बनने ही पृथ्वी पर जन्मे हैं । पर कोई जीव कब शिव हो सकेगा, इसके लिए समय की मर्यादा नहीं आंक सकते । इससे वह जीव अपने जीवस्वभाव को बदल नहीं सकता, ऐसा मान लेना भी यथार्थ नहीं है । उसकी अवधि का किसे पता है ? कल भी बदले ! अजामिल, गिद्ध, व्याध; सूरदास (बिल्वमंगल) आदि की प्रत्यक्ष प्रकृति के पीछे कोई गूढ़ अगम्य दैवी संस्कार विद्यमान थे ही । ऐसे संस्कार किसी जीव में कब उग निकलेंगे, अचानक कब फूट निकलेंगे ऐसी उसकी मर्यादा कौन बांध सकता है ? इसीलिए किसी भी जीव की प्रकृति को हम ख़याल में रखें, वह निरर्थक है, इतना ही नहीं; पर अपने लिए भावना के विकास में बाधा रूप भी है ? प्रत्येक जीव के सूक्ष्म रुख़ों को कौन समझ सकता है ?

अतः ऐसे किसी जीव के संबंध में हमारा किसी का और हमारा उसके साथ व्यवहार करने का प्रसंग आया तो हम स्वयं जीवस्वभाव से बह जाने की दिल में वृत्ति न

रखें और जीवस्वभाव से प्रेरित हो कर हमें नहीं देखना चाहिए । इतनी सावधानी दूसरों के प्रति हमारे व्यवहार में रहे तो भी बहुत काम हुआ गिना जाएगा ।

स्वजन : मनुष्यजीवन में स्त्री-पुरुष का युग्म है । इसमें से एक दूसरे को कौन मार्गदर्शक है ?

श्रीमोटा : जाने-अनजाने में स्त्री पुरुष को मार्ग दिखलाती है - प्रेरित करती है, किन्तु उसकी चेतनात्मक सभानता पुरुष को नहीं है । पुरुष तो ऐसा मानता है कि स्वयं ही सब चला रहा है । पर वह यथार्थ नहीं है। पुरुष माँ, बहन, पत्नी या उपपत्नी या ऐसी अन्य स्त्री की मदद से चलता होता है । पुरुष के जीवन में स्त्री महत्त्व का हिस्सा लेती है । इसमें पुरुष और स्त्री दोनों के संबंधों से ही समग्र जीवन का निर्माण होता है । उसी तरह प्रत्येक स्त्री के जीवन में किसी न किसी पुरुष की प्रतिमा या छाया काम करती है ही । इससे समझ सकते हैं कि हमारे जीवन में बननेवाला प्रत्येक जीव का संबंध उद्देश्य बिना नहीं होता । मात्र हमें उसका यथार्थ रूप से चेतनात्मक ख़याल नहीं होता ।

यदि इस विचारधारा में हम गहरे उतरें तो ऐसा भी कहलाएगा कि प्रत्येक जीव का संबंध यदि कर्म के उद्देश्य रूप हो और यदि उस कर्म को हम बंधनरूप न होने दें तो उन सारे संबंधों में हम भगवान की भावना का अथवा

तो हमारे जीवनविकास की भावना की चेतनात्मक समझ और उद्देश्य रखेंगे तो उन जीवों के संबंध हमें कर्म बंधनरूप नहीं होंगे । ऐसे विवाह से (यहाँ मात्र विवाहित के अर्थ में नहीं पर आत्मसंबंध के अर्थ में) हमारा विकास ही होता रहेगा ।

स्वजन : मोटा, यह सब समझना-आचरण करना कठिन लगे ऐसा है ।

श्रीमोटा : यह सब जीवस्वभाव को कठिन लगता है, पर जब नदी पहाडों को काट-काटकर मैदान में आती है, तभी उस का बहना सरल होता है । एक बार स्वभाव को जीत लेने की सीमा तक आ जाने के बाद से यह सब कुछ भी कठिन नहीं । हमें मात्र जीवस्वभाव से आचरण नहीं करना चाहिए पर जीवनआदर्श की भावना के उद्देश्य से हरेक प्रसंग में आचरण करें; इतना ही हमें ध्यान में रखना है ।

मानव का सही सत्त्व टकराव से ही प्रगट होता है । तभी जोश या धुन लगती है । अंतरदृष्टि की ज्योति उस समय जलती रख सकेंगे तो ऐसे टकराव से ही सच्चा ज्ञान मिलता जाता है । यों तो ऐसी विवाह की भावना से ही प्रवृत्ति जन्मती है, पर **जीव** मूल भावना को भूलकर मात्र उसमें से जन्मी प्रवृत्ति में रमा करता है । ऐसा करते-करते वह विवाह के उद्देश्य की सभानता को ही भूल जाता है।

इसीलिए फिर से कहता हूँ कि विवाह यानी कि संबंध– एक पवित्र भावना है । वह भावना अर्थात् पुरुष प्रकृति का हृदय से सुमेल साधकर परमचेतन को जानना, समझना और अनुभव करना ।

२. भावना

स्त्रियों में भावना

स्वजन-बहन : मोटा, हमें जिसके लिए प्रेम हो, उसके लिए सब कुछ करने का मन होता है और ऐसा करते भी हैं सही । पर हमारे किये की ओर ध्यान ही न दें, तब मन कुछ कचौटता है । आप तो कहते हैं कि जिसके लिए प्रेम हो, उसके दोष न देंखे । पर ऐसा होता नहीं है ।

श्रीमोटा : प्रेम हक्क़ नहीं माँगता । प्रेम तो न्योछावर होने में विजय समझता है । प्रेम का साम्राज्य तो हृदय पर है । प्रेम को ऊपर ऊपर भाव के साथ कोई संबंध नहीं है। ऐसे प्रेम के नशे में मस्त रह एक प्रेमी दूसरे प्रेमी के जीवन में जुड़ता जाता है तो जीवन में जो मस्ती, रस और आनंद मिलता है, वह मस्ती, रस और आनंद पूरे संसार को देखने की नयी दृष्टि देता है और हजारों सालों तक प्राणवान ऐसा एक प्रेरणादायी तत्त्व रख जाता है । हमें तो ऐसा प्रेमी युगल बनना है । कोई दूसरा ऐसा हो या न हो, इसके साथ हमें कोई संबंध नहीं है । हम ऐसा होने का

निश्चय करें और उसी के अनुसार आचरण करने का प्रेमभक्तिपूर्वक प्रामाणिकरूप से प्रयत्न करें इतना ही पर्याप्त है । यदि इसतरह आचरण करें तो किसी को संतोष देने जैसा नहीं रहता; पर अपने आप हमसे उसे संतोष मिलता जाता है । उल्टा हमारे लिए वह सतत आतुर रहता है ।

प्रेमी को क्या अच्छा लगेगा, किससे उसकी प्रसन्नता बनी रहेगी, किससे उसे सरलता रहा करेगी, किससे स्निग्ध हृदय में विशेष रस रहेगा, वह सब सूझना और उसीके अनुसार आचरण करना वह प्रेम की फिलोसफी में समा जाता है । प्रेमी उसी अनुसार आचरण करता है । प्रेम में अपने को भूलकर जिस पर प्रेम है, उसमें लीन हो जाना रहता है; स्वयं का ध्यान कम से कम होता है ।

हम यदि अपना व्यवहार आदर्श रखने का प्रयत्न करेंगे तो दूसरों की भूल देखने की दृष्टि हम में रहेगी ही नहीं । हमें अपनी सीमा या मान देखने या विचारने की आदत नहीं होती है, इसीसे हमारे मनमें बुरा लगता है, बाकी प्रेम की बात तो वैसी है, जैसे ऊपर कहा है ।

जहाँ आनंद है, जहाँ भेदभाव नहीं है, जहाँ निःस्वार्थ प्रेम है, जहाँ राग नहीं, जहाँ भावना का भाव आता है, हृदय द्वारा अच्छे विचार आते हैं । दिल में कोई अवर्णनीय रूप से उमंग उठा करती है, वहाँ-वहाँ भगवान का भाव ही व्यक्त होता है, ऐसा अनुभव करना होता है । विश्वास,

श्रद्धा तथा सर्वसमर्पण की शक्ति, सहनशीलता, धीरज आदि गुण स्त्रियों में होते हैं, उससे कम पुरुषों में होते हैं । **धर्म की भावना यदि जीवित रखी गई है तो वह स्त्रियों ने ही रखी है; और इसीलिए तो हमें भगवान माँ के गर्भ से जन्म देता है । ऐसी रचना उन्होंने की है ।**

प्रेम यानी गुलामी ?

स्वजन-बहन : मोटा, चाहे कुछ भी हो हम तो स्त्रियाँ ही हैं । आप जैसा कहते हैं वैसी शक्ति हम में कहाँ से आएगी ? जिसे प्रेम करते हों - उसी के लिए हम सब कुछ किया करें; उसके किये के सामने देखें भी नहीं - उसका उल्टा सीधा कुछ भी लक्ष में न लें तो वह एक प्रकार की गुलाम वृत्ति हुई कही जाएगी न ?

श्रीमोटा : हम अपने आपको बल न दे सकें तो दूसरा कौन देनेवाला है ? हम अपने लिए जितने उत्सुक रहेंगे, उतना बल हमें मिलनेवाला है । बल तो हमें हृदय से किये गये निश्चय से अवतरित होनेवाला है और केवल कोरे निश्चय से भी कुछ होनेवाला नहीं है । हमारे दोष जैसे-जैसे हमें सूझते जाँय वैसे-वैसे जब हम उसे हटाकर निर्मूल करते जाँय, तभी हमारे बल का सही भान होता है । ऐसी शक्ति सभी में होती है । मात्र हम उसका उपयोग नहीं करते, इसलिए वह जड़ हो गई होती है ।

गिरा हुआ मनुष्य जब तक स्वयं उठने का परिश्रम नहीं

करेगा, तब तक उसे कोई नहीं उठा सकता । इसीलिए जो निश्चय करें उससे मृत्यु पर्यन्त जुड़े रहें । मृत्यु भले ही आए पर निश्चय दृढ़ रहे ऐसा करें, तभी हृदय का भाव जागृत होगा ।

स्त्रियों में जो सर्जनात्मक शक्ति है, वह शक्ति आश्चर्यजनक है । हम से तुम लोग बहुत अधिक कर सकते हो; पर उसके साथ ही कमज़ोरियाँ भी तुम लोगों में इतनी ही हैं । इसलिए हमें तो गहरे भाव को मात्र प्रदीप्त करना है ।

जिसे हमने अपना दिल सौंपा, जिसे हम ज़िगर मानते हैं, जिसे सर्वस्व मानते हैं, ऐसे प्रेमी के लिए तो क्या न करें ? उसे जिसमें सुख मिले, उसमें हमें आनंद आना चाहिए । उसके रहनसहन के अनुसार हमारा जीवन होना चाहिए । हमें अपने प्रेमी में एकरूप हो जाना है, इसलिए हमें अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व भी मिटा देना है । उसे कोई गुलामी कहे तो वह भी मुझे तो क़बूल है । ऐसा गुलामीख़त प्रेम के लिए करना पड़े तो वह भी मैं तो कर दूँ । इस लिए तुम्हें भी ऐसी ही सलाह दूँगा कि प्रेमी के लिए कुछ भी करने में हमें आनंद आना चाहिए । उसमें पसंद-नापसंद का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए और उसमें अरुचि भी नहीं होनी चाहिए, अपने प्रेमी पर यदि हमारा सच्चा प्रेम जागा होगा तो यह जीवन तो क्या; पर ऐसे कितने ही जीवन हम उस पर और उसके लिए न्योछावर कर देंगे ।

स्वजन : मोटा, दूसरी बातों के बीच एक अन्य बात करूँ । प्रेम की भावना को ईश्वर की भावना के साथ तुलना करते हैं । तो प्रेम तो एक-दूसरे के हृदय में भारी उत्पात मचाता है । कभी बड़ी हिंसा भी करवाता है । प्रेम के कारण ऐसा सब क्यों होता होगा ?

श्रीमोटा : न देखा, न सुना और न समझ में आये ऐसा संसार में बहुत कुछ होता है । अनेक बार तो हमारे स्वयं के ही जीवन में और हमारी दृष्टि के सामने ऐसा अनेक बार हुआ करता है कि जिसका महत्त्व हमें समझ नहीं आता । संसार में यदि कोई बड़े से बड़ा चमत्कार हो तो वह प्रेम की शक्ति का है । प्रेम कोई ईश्वर विषयक समझ की तरह ऊपर लटकता और कल्पना में और बुद्धि में न आये ऐसा नहीं है । प्रेम तो, अनेक तरह की सृष्टि रचता है, चलाता है और नाश भी करता है और एक दूसरे के हृदय में बहुत से उत्पात मचाता है। यह सब लोगों की समझ में नहीं आता । परन्तु हमारे नित्य के व्यावहारिक जीवन में भी यदि हम देखें तो प्रेम ऐसा ही करता है, ऐसा लगेगा । 'प्रेम की भावना ही ईश्वरी तत्त्व है', ऐसा कहा है, उसका कारण यह है कि ईश्वर में निरूपित या समझे गुणों और शक्ति और प्रभाव प्रेम के जितने ही हैं ।

स्वजन-बहन : इतना होने पर भी आप फिर ऐसा कहते हैं - प्रेम का उत्कृष्ट रूप माता के हृदय में रहा है - यह समझ नहीं आता ।

श्रीमोटा : ऐसे प्रेम का जीवंत उत्कृष्ट दर्शन माँ के हृदय में भगवान ने रखा है । इसीलिए माँ जगतजननी है, माँ कल्याणमयी है और संसार के आदि से अंत तक माँ पतितपावनी रही है और रहनेवाली है । माँ के प्रेम के कारण ही उसकी गोद में हम बालक के रूप में निश्चिन्त रह सकते हैं । माँ भयंकर काली स्वरूप होने पर भी उसका डर हमें नहीं लगता । माँ मारती है, तब भी बालक बार-बार घूम-फिर कर उसी की गोद में सिर रखने जाता है और माँ उसके सिर पर प्रेम से हाथ फेरती है । माँ के प्रेम की ऊष्मा जगत में किसी दूसरी शक्ति के पास नहीं है । माँ के ऐसे प्रेम से बालक को क्या नहीं मिलता ? माँ यदि उसके ऐसे रचनात्मक प्रेम का भाव जानती हो और उसके ध्यान में आता हो तो वह बालक को क्या नहीं दे सकती ? इसीलिए ही हमारे शास्त्रकारों ने **मातृदेवो भव** ऐसा पहले गाया है । माँ के हृदय में बालक का विकास करने की जितनी शक्ति है, इतनी शक्ति पुरुष के हृदय में है ही नहीं । माँ अपने बालक को चाहे तो परम पुरुषोत्तम बना सकती है और चाहे तो संसार का एक

पामर से पामर व्यक्ति भी बना सकती है । बालक वह माता की बपौती है । माँ की एक ही भावना बालक में शक्तिशाली प्रेरणा जागृत करती है । माँ का दूध यह मात्र स्थूल दूध नहीं, पर चेतना का अमृत है । प्राण की स्फूर्ति है । देव और दानवों के द्वारा अनेक संकटों, महाकष्टों के बाद समुद्रमंथन से उद्‌भवित अमृत है । उसे कामधेनु कहें तो भी अतिशयोक्ति नहीं है । यह सब कोई कवि की कल्पना अर्थात् मिथ्या नहीं है, परन्तु संसार ने समझ कर और अनुभव की हुई यथार्थता का यथार्थ वर्णन है । जब भी कोई भावना उत्कट रूप से हम में जागृत हुई होती है, तब उसमें स्फूर्ति, चेतनाशक्ति, वेग, रस और स्थान, काल की सीमाओं को पार करने की शक्ति आदि सब कुछ आता है ! ऐसी भावना हृदय में पैदा हो सकती है ।

स्वजन : यदि माँ के साथ बनता न हो तो ?

श्रीमोटा : जब तक हमें अपनी जन्मदात्री के प्रति अतिप्रेम और पूज्यभाव हृदय में न हो, वहाँ तक उस भावना को हम अधिक विस्तृत नहीं कर सकते । अपनी माँ के मत या विचार के साथ भले ही न मिलते हों; परन्तु उसके साथ का भाव बहुत ही उत्कट होना चाहिए । परन्तु इतना ही नहीं पर यह भाव पत्नी के प्रति भी होना चाहिए । जहाँ तक अपनी पत्नी में माँ के अंश का और उसकी कोमलता एवं स्नेहार्द्रताभरी संभाल का पूरा परिचय, हमें

न हो, उस दृष्टि से उसे हम देखते न हो जाँय, तब तक हम में वह भाव जागनेवाला नहीं है । **फिर हमारा उत्साह, तमन्ना और जीवन का ध्येय यदि अपनी सहचरी में उतारना होगा, तो पत्नी के लिए प्रेम और पूज्यभाव दोनों भावनाओं को विशेष प्रमाण में विकसित करना होगा । ऐसा होगा तभी हमारे एक ही बार कहे वचन का भी हार्द वह समझ सकेगी और जीवन में उतार पाएगी ।** जीवन में हमें जिसे साथ लेना है, और साथ रहकर परिवर्तित करना है, उसके साथ ऐसी भावना रखे बिना होनेवाला नहीं है । स्त्रीमात्र में मातृत्व सहज रूप से विद्यमान है ही । यों तो पुरुष में भी है, पर स्त्री के अंदर मातृत्व की भावना अधिक प्रमाण में विकसित है और पुरुष के अंदर यह मात्रा न के बराबर ही है । इसलिए उस मातृत्व की भावना को लक्ष में रखकर हम उसके प्रति आचरण करें तो हमारा भी विकास होगा और दूसरों का भी होगा ।

विरह

स्वजन-बहन : जिसके प्रति प्रेमभाव होता है, वह हम से दूर होता है, तब दिल में विरह की व्यथा होती है, यह क्या है ? इसे आसक्ति या मोह गिनें ? ऐसा होता है, इसका क्या मर्म होगा ?

श्रीमोटा : ब्रज की गोपियों को प्रेम का उत्कृष्ट स्वरूप अनुभव करने के लिए ही भगवान ने विरह का

अनुभव करवाया होगा; और उसके बिना वैसा उत्कर्ष हृदय में उठना संभव ही न था । यों प्रत्येक प्राप्त स्थिति हमें कुछ न कुछ लाभ के लिए ही प्राप्त होती है – पर यदि हम तटस्थतापूर्वक उसकी ओर दृष्टि, वृत्ति और भाव रखकर समझें तो विशेष रूप से तुम पुत्र में खास करके – वह दूर होने से जो जीवभाव रखती हो वह प्रत्येक माँ रखे यह स्वाभाविक है । माँ का स्वभाव ही भगवान ने ऐसा बनाया है, नहीं तो हमारे अंदर जो कोमल भाव और दूसरे प्रेम की भावनाएँ हैं, वे हम में पनपी न होतीं । फिर 'माँ' में ऐसी शक्ति भगवान ने न रखी होती तो मनुष्यजात की वृद्धि न हो पाई होती । माँ में रहा यह तो नैसर्गिक गुण है । उस गुण द्वारा अनेक साध्वी स्त्रियों ने अपने बालकों को महान बनाया है । अधिकतर ऐसे महान पुरुषों के जीवनचरित्रों द्वारा हमें पता चलता है कि उनमें उनकी अपनी माँ की ओर से ही ऐसी शक्ति संपादित हुई थी । प्रेम के विरह बिना हम में कोमल भाव तीव्र रूप में नहीं आता है और उसमें सूक्ष्मता भी नहीं आती है तो फिर वेग तो हो ही कहाँ से ? विरह से ही प्रेम में कोमलता, सूक्ष्मता और वेग आता है । यह कोई गप की बात नहीं, बुद्धि में उतर सके ऐसी है । फिर प्रेम के अत्यन्त विरह द्वारा जिसका हमें विरह हुआ हो, वह हमारे अधिक निकट आता है । प्रेम का विरह तो नयी दृष्टि देता है और नया

जीवन लाता है । **दूसरों को अधिक महत्त्व देकर स्वयं नीचे रहना चाहिए तभी हमारा सब कुछ सरल व सुलभ चला करेगा ।** प्रेम ऐसी कला को हमें सिखलाता है ।

प्रियजनों का विरह हमें इतना अधिक सालना चाहिए कि विरह की भावना से हमारा हृदय अधिक के अधिक कोमल बने । एक भक्त कवि ने लिखा है –

'किया है मेरे हृदय को कोमल
विरह अगन में जला जला कर ।'

अर्थात् जिसे हम पाना चाहते हैं, उसके साथ और उसकी भावना का संपूर्ण तादात्म्यपना हो, इसके लिए जहाँ तक हम बहुत-सी तमन्ना और जागृति पैदा न कर सकें, तब तक ऐसा होना संभव है कि जो नया दृष्टिबिन्दु हमारी समझ में आया है, वह दृष्टिबिन्दु हमारी प्रकृति भुला दे अथवा उसमें भ्रम पैदा कर दे ।

हमारे यहाँ तीर्थस्थानों का माहात्म्य बहुत ही माना गया है और महापुरुषों की जो-जो जगहें हों उन्हें भी तीर्थ स्थान ही गिना गया है, इसका कारण भी कुछ ऐसा ही होगा; क्योंकि जिन-जिन जगहों में हमारे मन में जो नयी समझ आयी है, उसे अधिक गहरी जमाने में या गाढ़ करने में बहुत मदद मिलती है । स्वामी विवेकानंद जब जब श्रीरामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के मूल स्थल पर जाते, तब उन्हें श्रीरामकृष्ण की तादृश्य झाँकी होती और वे जो कुछ

भी करते थे, वह सब कुछ स्वामी को स्पष्ट रूप से पता चलता था । उनके भाव के अंदर की जो उत्कटता और भगवान श्रीरामकृष्ण पर जो अति आदरभाव था, उसके कारण ही उन्हें ऐसा होता होगा; परन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं कि जब उनके ऐसे कोई महान कष्ट के समय श्रीरामकृष्ण ने प्रत्यक्ष रूप से उन्हें रास्ता दिखलाया है । इसलिए हम जहाँ तक भगवान के अमूर्त abstract भाव को अनुभव न कर सकें हों, तब तक स्थूल रूप में हमारे एकदूसरे के संबंध में हम ऐसी विरह की भावना बढ़ाया करें, जिसके कारण मुझे ऐसा लगता है कि हमारी समझ को टिकाये रखने के लिए तथा उसे अधिक से अधिक गहराई में ले जाने के लिए सहायक होगी ।

स्त्रियों के प्रति अभिगम

स्वजन : एक बहुत ही निजी अभिगम आपके सामने व्यक्त करता हूँ । मेरे में रही स्त्रीमात्र के प्रति की वासनावृत्ति कब निर्मूल हो सकती है ? स्त्रियों के प्रति सम्मान, आदर होना चाहिए, ऐसा मन से माना जाता है, पर व्यवहार में क्या स्त्रियों में संकुचितता अधिक नहीं होती ?

श्रीमोटा : पुरुषों ने स्वयं को सर्वोपरि मानकर संसारभर में वासना को अधिक पोषित किया है । और स्त्रियों को भी वैसा ही बना दिया है । इसलिए जहाँ तक

पूज्यभाव, आदर और मान का भाव उसके प्रति नहीं बढ़ेगा, तब तक हमें लाभ नहीं मिलेगा । इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि अपनी पत्नी या सगी बहन को कहीं कुछ न कह सकें । वे अनेक सदियों के व्यवहार और आचरण से दबी हुई हैं । इसलिए हमारा मानने में उनमें स्वतंत्र शक्ति नहीं रह गई है । यद्यपि एक ढंग से देखें तो पुरुष पर स्त्रियों का चलता होता है । यों उन पर पुरुष का वर्चस्व होता है यह तो सही है । इसलिए जो दबा हुआ है, उसे ऊपर लाने के लिए हमें बहुत ही मौके देने पड़ेंगे । बहुत ही कोमल बनना पड़ेगा । उसके शायद अपमान भी सहने पड़ें । ऐसे अपमान सहने में हमारा प्रायश्चित हो रहा है, ऐसा ज्ञान विवेकपूर्वक हमें ध्यान में रखना होगा । इतनी हद तक जागृति रखने के लिए स्वयं को तैयार करना होगा । परन्तु व्यावहारिक बात में जहाँ लाभ-हानि हो, वहाँ सूक्ष्म रूप से उन्हें टोकना, हमारे ध्यान में आए तो उसमें हमें चूकना नहीं चाहिए । पर उसके पीछे का भाव एक मित्र जैसा होना चाहिए ।

हम लोग अनेक बार बहनों के आचरण पर अन्याय करते रहते हैं । उन्हें संकुचित गिनते हैं । पर वे लोग एक ही मर्यादित क्षेत्र में (बाहर की दृष्टि और उन्हें बाहर का कुछ भी काम न होने से) काम करने से उनकी दृष्टि वैसी हो जाती है, उसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए । संकुचित

क्षेत्र में काम करना हो, तब जीवन का ध्येय कोई उच्चगामी आदर्श पर न हो, उस विषय में वृत्ति और दृष्टिबिन्दु खिले न हों, जीवन के संस्कार का कुछ भी ख़याल न हो, जीवन के सच्चे मूल्यांकन का कुछ भी पता न हो, ऐसे को संकुचित वातावरण की असर मन पर हुए बिना नहीं रहती । उसका जीवन चार दीवारों के अंदर घिरा होता है । उसमें बाह्य दृष्टि नहीं होती । उसका मन स्वयं, पति, पुत्र, पैसे और उनसे संबंधित व्यवहार वही और उतने में ही उसका जीवन समाया रहता है । जिससे दिनोंदिन वह अधिक संकुचित होता जाता है । एकमात्र ओढ़ने पहनने में, अच्छे लगने में, गहने-कपड़े पहनने में, शृंगार सजने में, पैसे संग्रह करने में और इसतरह गधा मजूरी करने में ही वह जीवन की इतिश्री वह मानती हैं । जीवन का पारमार्थिक या पारलौकिक अर्थ उसे सपने में भी सूझता नहीं है । उसके मन में जीवन के आनंद की कल्पना कोई दूसरे ही रूप में होती है और वह केवल पार्थिव होती है । पार्थिव में भी भेद है । पार्थिव आनंद में भी कुछ आशय रहता होता है । ऐसे **जीवों** के जीवन जीने के पीछे भी कोई आशय नहीं होता है । 'गोबर में जन्मे और गोबर में मरे' इससे अधिक कुछ भी उनके जीवन में नहीं होता । यहाँ उनका यानी सामान्य लोगों का जीवन होता हैं । ऐसे लोगों में बाह्य दृष्टि रखते और

बाहर के वातावरण में फिरते पुरुष भी यदि अधिक बड़ी संख्या में हों तो बहनों का तो पूछना ही क्या ?

जब हमें ऐसी बहनों का परिचय होता है, तब उनके प्रति हमें बहुत हार्दिक भावना एवं सहानुभूति का भाव उत्पन्न होना चाहिए । उस भाव से प्रेरित हो उनके लिए जो कुछ भी हो सके, वह हमें अपने परिसर में हमें प्रयत्न करना चाहिए ।

समाज में किसी एक बहन की भूल होते सभी उस पर टूट पड़ते हैं । उस पर सहानुभूति रखनेवाले पर भी संसारवाले बुरी दृष्टि से देखते हैं । ऐसे संसार के चश्मे हैं । इसलिए इस विषय में हमारी दृष्टि हमें पूरी तरह समझ लेनी चाहिए । फिर मुझे बहनों के साथ व्यवहार में आना पड़ता है, तब मैं तो फूल जैसा कोमल बनता हूँ और कठोर से कठोर भी बनता हूँ, पर उसका आधार संयोगों पर निर्भर करता है । इसलिए अमुक ही प्रकार का वर्ताव या व्यवहार रखें ऐसा कोई जड़ नियम इस विषय में नहीं रख सकते, पर अपने मन की वृत्ति ऊपर बताये प्रकार की होनी चाहिए और हमारा उनके प्रति प्रत्येक वर्तन में हमारी उसी भावना और कोमलता की छाप पड़ी हुई होनी चाहिए । ऐसी स्थिति में हमारी वह कठोरता उनके हृदय को सालेगी नहीं ।

स्वजन : मोटा, आप बिलकुल सच बात करते हैं ।

एक बहन है, जो हमारे ही साथ रहती है । स्वयं का पति चाहे कैसे भी मार्ग पर था, तब भी उसी से ही उलझी रहती है और वफ़ादार रही है । स्त्रियों में ऐसी भावना अधिक प्रमाण में देखने को मिलती है, इसमें समाजव्यवस्था ही जिम्मेदार है न ? मुझे तो अपने वर्ताव के विषय में मार्गदर्शन चाहिए ।

श्रीमोटा : जब हमारा प्रेमीजन याद आता हैं, तब हमारा चित्त भी प्रेममय बन जाता है । उन्हीं की ढब हम जाने अनजाने करते-करवाते हैं, ऐसा लगा करता है । हमारे समाज ने कुछ संबंध हमारे जीवन में इस तरह जोड़े हैं कि जिनका हम यदि आलंबन के रूप में उपयोग करें तो हमारे में रही भावना को हम अवश्य विकसित कर पाएँगे । पुरुष से स्त्रियाँ समाज में अधिक सहन करती हैं और अधिक त्याग करती हैं, यह अभी हमारे हृदय में नहीं उतरा है । वह बहन जो सहिष्णुता के साथ अखण्डरूप से और अविरतरूप से पति से जुड़ी रही और जो प्रेमभाव बनाये रखा, उसकी जगह यदि हम होते तो हम ऐसा प्रेमभाव रख पाते या नहीं, उसमें मुझे शंका है । **पत्नी के प्रति जीवन में एक साथी के रूप में जो प्रेम होना चाहिए, इतना ही नहीं किंतु जो मान एवं आदर होना चाहिए, वह भी हम में से बहुत सारे नहीं रखते । हम अपने मित्रों को कितना चाहते हैं ! उनके साथ कितने**

सहृदय हो बात करते हैं ! परन्तु इसमें से हम कितना अपनी पत्नी के साथ करते हैं ? पति-पत्नी के दिल संपूर्ण रूप से एक हो गये हों और वहाँ संपूर्ण सुमेल हो गया हो तो हमें साधना में बहुत मदद मिल सकती है । यह मात्र कल्पना की बात नहीं है ।

जिस समाज ने स्ववश या विवश होकर रूढ़ि के अधीन हो स्त्रियों को उनका स्थान समाज में विकास की दृष्टि से नहीं रहने दिया और जिस समाज ने भील, वाघरी, घाराळा, कोली, बारैया आदि जाति को आगे बढ़ने का अवसर ही न रहे ऐसी व्यवस्था की है, उस समाज को उनके कर्म का बदला आज नहीं तो कल मिलनेवाला ही है । जिन्हें भगवान के रास्ते पर जाना है, वैसे हमें समाज की इस लीक से निकल जाना चाहिए ।

हमारे साथ रहते हुए भी हम उस बहन को नहीं समझ सके, उसके दिल का दर्द और छिपा मंथन तथा उसकी अंतर व्यथा और उसके कारण उसका विकृत हुआ मानस आदि हम परख नहीं पाये; इससे वह अपना ऐसा मानस आदि को कहीं अंतरमन में रखकर हमारे साथ कैसा वर्ताव करती है ! मानो कि वे सभी हक़ीकतें अस्तित्व में ही न हों ! हम से तो ऐसे संजोगों में बड़बड़ाहट किये बिना रहा भी न जाएगा । या तो बोलकर, गुस्सा कर या दूसरी तरह क्रोधित होकर हम तो सब उथलपुथल कर देंगे ।

बहनों की सहनशक्ति के कारण अथवा यों कहें कि उनकी लाचारी के कारण वह सब सहन कर लेती हैं ।

हमारे जीवन की किसी भी परिस्थिति में उन्हें (स्त्रियों को) हम जीवनसाथी के रूप में मन और हृदय में सतत रखा करें । उनके जीवन में रुचि लेकर, उनके हृदय के साथ हृदय मिलाकर उनके साथ संपूर्ण रूप से एकता बनाकर सिर पर कितने ही खतरे मंडराते हों, तो भी उनके प्रति कड़वाहट खड़ी न होने दें । मेरा इतना ऋण यदि अदा करोगे तो मैं तुम्हारा ज़िंदगीभर का सेवक बनकर रहूँगा । उन बहनों की जितनी आशिषें मिलेंगी, वह मेरे भगवान की दुआ के समान । इसके साथ ही नया जीवन यदि हम एकभाव होकर जीना शुरू कर दें तो उसके आनंद की मज़ा हम कुछ निराली ही अनुभव करेंगे । यह भी साथ साथ दीपक की तरह साफ़ है और यह लाभ भी कोई ऐसा वैसा नहीं है ।

विवाहित साधकों को

स्वजन : मोटा, कोई व्यक्ति विवाहित हो और वह अपने जीवन के ऊर्ध्वगमन के लिए साधना करने की आतुरता रखता हो तो उसे अपनी पत्नी को किस भाव से देखना चाहिए ? यद्यपि इसमें उल्टा भी संभव है । कोई स्त्री जीवनसाधना चाहती हो तो अपने पति के प्रति कैसा आचरण करे ?

श्रीमोटा : प्रकृति के सुरम्य, सौन्दर्य भरे दृश्य देखकर हमें कितना आनंद मिलता है ! उसी तरह हमें अपनी पत्नी के स्वरूप को (और पत्नी को पति के स्वरूप को) देखकर उसमें से जैसी समझ और दृष्टि विकसित हुए उससे हम पत्नी को साधन की तरह नहीं, बल्कि साधना के रूप में समझनी चाहिए । **उसका प्रत्येक भाग हम में दिव्य भावना प्रेरित करने के लिए भगवान ने सर्जित किया है, यह हमारी समझ में आना चाहिए । उसके साथ और कोई दूसरी भावना से हमें खेल नहीं खेलना चाहिए ।** विवाहित साधकों को यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी है । इसे भी अपनी साधना के एक महत्त्व का हिस्सा, अत्यन्त आवश्यक भाग के रूप में स्वीकार कर हमें उसे आचरण में लाकर जागृतिपूर्वक प्रयत्न करना होगा । ऐसी साधना यदि हम करेंगे तो अपनेआप हमें उस पर प्रेम उत्पन्न होगा ही । अपनेआप उसके प्रति कोमल होंगे ही, परन्तु इसके साथ हमें इतना याद रखना है कि व्यवहार के क्षेत्र में और दूसरी ओर उसका इतनी ऊँची कक्षा पर रहना जहाँ जहाँ न हुआ हो, वहाँ वहाँ दो में से कोई अधिक इस विषय में समझा हो उसे दूसरे को (अपने जीवनसाथी को) सतत (उस कक्षा में आये इस तरह उसका जीवन उन्मुख हो उसके लिए) उसके स्खलन उसे बताने ही पड़ेंगे । जहाँ जहाँ उसकी

दक्षता न हो, जहाँ जहाँ उसके विचारों में जड़ता हो, जहाँ जहाँ उसका आचरण योग्य न हो, जहाँ जहाँ नित्य के व्यावहारिक कामों में जिस समय जो होना चाहिए, वह न हो रहा हो, वहाँ वहाँ उसे उसे सज़गकर योग्य करने या करवाने में पूर्ण रूप से सहयोग देना ही पड़ेगा । उसके प्रति हमें दुर्लक्ष नहीं रखना चाहिए । क्योंकि हमारी साधना का साधन (जीवनसाथी) जितना दोषपूर्ण रहेगा, उतना हमें कम लाभ होगा ।

यद्यपि हमारी भावना अधिक बलवान होगी तो शायद हमें प्राप्त लाभ में खास कमी न होगी, तो भी जिस साधन का हम उपयोग करते हों, वह साधन ज्यों का त्यों कोरा रहेगा तो वह साधन उस भावना को समझने के लिए और स्वीकार करने के लिए तत्पर ही नहीं होगा । इसलिए हमारी साधना का साधन यदि समझदार या साधना के भाव को स्वीकार करने की तैयारीवाला हो और साधना के रहस्य को पूरी तरह उसकी भूमिका बनाने के लिए अनुकूलता देनेवाला हो या बनें तो हमें बहुत लाभ होगा और हमारी प्रगति और विकास हमारी कल्पना से अधिक शीघ्र होगा, यह हमारे जीवन का एक बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है । इसे कृपाकर तुम अच्छे ढंग से समझो । तुम दोनों एक जीवनवाले बनो उस उद्देश्य से यह कहा है । इसलिए तुम ऐसा जीवन जीनेवाले बनो और इसप्रकार परस्पर दिव्य

साधन बने रहो, ऐसी मेरी तो तुमसे अपेक्षा है । इसमें यदि तुम्हें कहीं समझ न आये तो बिना संकोच मुझे अवश्य पूछें ।

स्वजन : संसार में कितनी ही बार संमिलित (involve) होने का मन बहुत होता है । पर संमिलित कैसे रहें, ऐसा आता नहीं है, क्योंकि कितनी ही बार मेरे भोलेपन के कारण लोग मुझे मूर्ख बना डालते हैं । आप कहते हैं 'देते रहो ।' - यह प्रभु को निवेदित करना ही है न ? संसार में क्या देना है ?

श्रीमोटा : हमें संसार में संमिलित रहना है सही; परन्तु वह रचनात्मक ढंग से । हमारी वृत्ति उदार हो, भगवान की शरण में जाना सीखें, उसमें ही लगे रहने का प्रयत्न करते रहें तथा उसकी समझ हमारे दिल में आए इसतरह हमें संसार को भोगना है । इससे दूसरा मार्ग हमारा नहीं है । जहाँ जहाँ बड़ा बनकर घूमना, दो सज्जन व्यक्ति हमारी अच्छी अच्छी बातें करें, सभी में इज़्ज़तदार बने रहें, हमें धनवान के रूप में चार व्यक्ति पहचानें तथा मान दें, ऐसी अनेक अभिलाषाएँ हमें भगवान के चरणकमल में समर्पित करनी ही पड़ेंगी । तभी हम जीवनप्रिय के जीवन के सहभागी और सहभोगी हो पाएँगे और उसके उपयुक्त साधन रूप उपयोगी होंगे । हमारा जीवन यदि उसके जीवन में भाव या ऊष्मा या भावना अधिक ठोस रूप से पैदा

न कर सकें, तो हमारा जीना उसके यथार्थ स्वरूप में न जीया गया गिना जाएगा । हमें तो जीवनप्रिय को सर्वस्व गिनना है । जिस तरह उसमें चेतनात्मक भावना में बढ़ोत्तरी हो उसी तरह हमें जीना है । कृपाकर इसप्रकार की दृष्टि बढ़ाएँ ऐसी विनती है ।

हमारे भोलेपन का फ़ायदा दूसरे न उठायें या हमारे भोलेपन से हम स्वयं धोखा न खाँय, ऐसी समझ हम में आनी चाहिए । भूतकाल में हम अपने भोलेपन से छले गये हैं और उसका थोड़ा बहुत भान हमें हुआ भी है ।

भोलापन एक सद्‌गुण है सही, परंतु सद्‌गुण की भावना से हमें जीवन के विषय में अधिक समझ मिले, दूसरों की सरलता और निखालसता देखने में वह हमें मददरूप हो, तो वह सद्‌गुण है । उसके साथ-साथ हम वैसी वृत्ति से अनजान रहें वह भी उचित नहीं । हम में क्या है ? और क्या नहीं है ? वह साधक को जानना चाहिए और जो कुछ भी पता चले, वह सब भगवान के चरणों में सौंपना है ।

हमें जब कुछ न कुछ लेना होता है, तब कुछ न कुछ देना पड़ता है । दिये बिना संसार में कुछ भी नहीं मिलता । ऐसा कुछ तो बतलाओ कि जो दिये बिना प्राप्त हुआ हो ? ऐसा देते रहने से ही यह संसार बना रहा है । परंतु इसका हमें भान नहीं हो पाता, क्योंकि उतनी चेतना-जागृति हम

में नहीं है । इसलिए अब हमें सभानता रखकर देते रहना है और वह किसलिए हम देते हैं, उसका ख़याल हमारे हृदय में दृढ़ रूप से रखना है, तो वह देने का अर्थ अवश्य सार्थक होगा । देने की महिमा अनंत है, देने से क्या क्या नहीं होता तथा क्या नहीं हुआ वह कह नहीं सकते । देते रहने से ही इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय हुआ करता है । तुम जब बहुश्रुत बनोगे, तब तुम्हें उस पर एक निबंध लिखने को कहूँगा । घर में भी जो कुछ भी हमारे उपयोग में आया करता है, इसीलिए उसे हम संभाल कर रखते हैं । 'बेटा' भी तुम्हें देता है, इससे प्यारा लगता है और तुम भी उसे प्यारे लगते हो, क्योंकि तुम उसे देते हो । संसार में निरंतर ऐसा देने का व्यवहार चला करता है । ऐसे यज्ञ में तो जितनी आहुतियाँ होमित होंगी उतना हमारे लिए उत्तम है । यदि कोई कुछ न देता हो, तो उसे हम एक क्षणभर भी हम निभाएँगे नहीं ।

कृपा स्वीकार करने का उपाय

स्वजन-बहन : मुझे ससुराल में बहुत अकेलापन लगता है और अच्छा नहीं लगता । आपने तो मुझ पर अपार करुणाकर मेरा स्वीकार किया है, पर मेरा करम ऐसा है कि में आपकी कृपा स्वीकार नहीं कर सकती । **मोटा,** आपका सूक्ष्म भाव स्वीकार कर सकूँ ऐसी मेरी बुद्धि को खोल दें ।

श्रीमोटा : तुम्हें अकेला अच्छा न लगे यह समझ सकता हूँ । पर यह तो हमारा तपोवन है । हमें अंत्यज जैसा गिन कर समाज हमें अलग रखे तो भी हम उसकी सेवा प्रेमभाव से प्रभु मानकर किया करें और मन में उनके लिए एक मात्र प्रेमभाव बिना कुछ भी न उठने दें, तभी प्रभु खुश होंगे ।

मात्र तुम्हारे लिए ही - तुम्हें हमारे साथ रखने के लिए - उल्टी गंगा हमने तो बहायी है । अब तुम यदि हमारे हृदय की एकमात्र भावना रूप में न टिक सको - न जी सको तो हमारे हिस्से तो वाँस डूबे न ?

अपने मन में तुम अभी बहुत सारा भरकर रखती हो और मन में कुछ न कुछ जो विचार करती रहती हो और बढ़ाती हो, इससे हृदय को कभी जो धक्का लगता है, वह तो जो कोई एकभाव से एक दूसरे के हृदय में प्रेमरस से ओतप्रोत हो वही जाने । इसलिए कृपा करके ऐसी मूर्खता छोड़ दो । इसलिए कृपा कर भगवान का भजन किया करें बालानंद स्वामीरूप में जो हरिदत्त प्रभु मिले हैं, उसमें ऐसी प्रेमभावना जागे ऐसे संस्कार यदि हमारे जीवन में नहीं हों तो उनमें कहाँ से आनेवाले हैं ? कुएँ में न हो तो अबाह में कहाँ से आएगा ? यह कृपाकर दोनों जन ख़याल में रखें ।

अब तो मन के छंदों का सुमेल बनाये रखकर जीवन

को संगीत के सुरों से भरकर प्रभु के चरणकमलों में उसे रिझाने की एकमात्र भावना से जीया करें, तभी जीवन में आनंद पा सकोगे ।

इस जीव के प्रत्येक **जीव** के साथ के आचरण को वह **जीव** स्थूल भावना में ही लिया करता है । इससे ऐसा **जीव** भ्रमणा में ही पड़ता है और सही चीज ग्रहण करने में निष्फल रहता है, इसलिए अंतर में झाँखें ।

भूमिका का महत्त्व

स्वजन : इस काल में वेद मंत्रों का पारायण हो और उनका प्रचार हो यह आवश्यक नहीं लगता ? अथवा तो ऐसा हो कि उसके पीछे हमें किस प्रकार की भावना की भूमिका रखनी चाहिए ?

श्रीमोटा : वेद का पारायण अर्थात् मात्र मंत्र पढ़ जाना ऐसा उसका रूढ़ अर्थ माना जाता है । परंतु वेद का पारायण अर्थात् उसकी भावना को जीवन में उतारना यही सही सूक्ष्म अर्थ है । वेद अर्थात् भगवान की वाणी - भगवान की भावना - उसका प्रचार यानी जो सर्वत्र और सर्व में रम रहा है और जो सर्व में सुषुप्त गूढ़ सोया हुआ है और उसे जगाना और उसकी सेवा सब तरह से और सर्वभाव से करनी चाहिए । उसका ही नाम सच्चा प्रचार है । वेद का प्रचार अर्थात् दरिद्रनारायण की सेवा ।

जो राज्य या शासन वेद का प्रचार करना चाहता है,

वह मात्र उसकी मर्यादा यज्ञ करने में या पंडित विद्वान उसके मंत्र पढ़ जाँय; इतने में ही वह उसे समा दे तो उसके रहस्य को वे पूरी तरह समझ नहीं पाये हैं । उन मंत्रों के रहस्य और महत्त्व के माहात्म्य को समझने के लिए भी शुद्ध भूमिकावाला मानस चाहिए । फिर मंत्रों का पुनः पुनः उच्चारण शुद्ध भावना से होना इसलिए जरूरी माना जाता है कि इससे मानव का मन–जीवन के उद्देश्य के प्रति आकर्षित रहे । भगवान के भाव की रम्य-भव्य तथा पारावार दिगंतव्यापी अर्थगांभीर्य और अनेक अर्थी रहस्यमयता समझे, आज कौन है, जो जानकर समझकर हृदय में–जीवन में उतार सके, ऐसा है ? प्रजा के ऊपर लगाया कर भार की अधिकता कम हो और उन्हें अनेक सुविधाएँ, स्वास्थ्य सुमेल प्राप्त हो ऐसी तंत्रव्यवस्था जो करे वह भी वेदप्रसार ही है ।

किसानों के पास से निरर्थक उचित घोषणा किये बिना कर के अलावा अपने ही निभाव के लिए जो अधिक अन्य कर ले वैसा राजा ऐसे यज्ञ करके प्रजा में से राजा की भावना का नाश होते रोकने का एक मूर्खतापूर्ण प्रयासमात्र है ।

मानवमात्र को अच्छा दीखना और जताना पसंद है । सभी उसे अच्छा गुण मानना चाहते हैं, पर प्रत्येक के मार्ग अलग अलग ही रहेंगे । हम ऐसे तंत्र में ढले होने पर भी

उस तंत्र को क्रियान्वित करें या मानें उसे पकड़ में जकड़े बिना उसमें आचरणमूलक बन सकें तो ही कुछ करना संभव हो सकता है । जो कुछ कर सकें उसकी भूमिका हमारी भाव विकासक और तत्त्वविकासक होनी चाहिए । प्रत्येक गुण का उद्देश्य और अर्थ तत्कालीन स्थिति की भूमिका पर आधार रखता है । प्रामाणिकता का गुण विद्यमान हो पर यदि उसकी भूमिका कायरतापूर्ण हो तो वह प्रामाणिक होते हुए भी उस गुण का माहात्म्य ज़रा भी नहीं रहेगा । जो व्यक्ति डर के मारे प्रामाणिकता बतलाये अथवा प्रपंचभाव को लेकर वैसे दीखने का उचित रूप से आचरण करने लगे, पर इससे ऐसे गुण का लाभ उसे नहीं मिल सकता । उल्टा उसकी जैसी भूमिका वैसा ही आकार वह लेता रहता है । दीखता योग्य गुणवाला हो पर भूमिका यदि अलग हो तो योग्य गुण का उद्देश्य तो मर जाएगा और विपरीत भूमिका के योग्य उसका प्राबल्य बढ़ता जाएगा वैसी वैसी उसकी समझ है । इसलिए **हम कर्म कुछ भी करते हों पर भूमिका हमारे अंतर स्थित भगवान की धारणा में तथा उसकी भावना में ही वह सतत लगातार केन्द्रित रूप से जुड़ा हुआ रहे तो सभी कर्म यज्ञरूप ही हैं ऐसा जानें और मानें ।** ऐसी जीवात्मा ऐसा करते-करते स्वयं ही यज्ञनारायण बन जाती है ।

पैसों का उपयोग

स्वजन : अभी मेरा वेतन बढ़ा, **मोटा ।**

श्रीमोटा : पैसों की बात में तुमने मेरी सलाह स्वीकार नहीं की है । हम संसार के व्यवहार को लेकर बैठे हैं । इसलिए कब बीमार हो जाँय उसका कुछ पता नहीं और उस समय पैसों की आवश्यकता हो, तब उसके बिना परेशान होना पड़े यह ज़रा भी उचित नहीं है । इसलिए प्रत्येक महीने अमुक रकम मुझे भेज देने को तुम्हें कहा पर उसका पालन अभी तक हुआ नहीं है । यदि वहाँ भी अलग रख सके हो तो वह भी आनंद की बात है ।

कुछ भी कोई नया कर्म या उसका विचार आये तो मुझे कहो अथवा तो उस कर्म से अथवा तो उस कर्म का दृढ़ निश्चय होने से पहले दूसरे को बतलाने से पहले उसका आघात प्रत्याघात क्या होगा, उसे समझना बहुत आवश्यक है ।

प्रत्येक कर्म में हम अकेले नहीं जुड़े हैं । इसलिए कर्म की समग्रता को जीवनविकास की दृष्टि से हमें ख़याल में रखना है । कर्म को इस ढंग से ही हम विचारें । प्रत्येक कर्म जहाँ तक अहम् की भूमिका पर बनता हैं, वहाँ तक वह जरूर संस्कार पैदा करेगा ही और संस्कार मिटाने हों तो उसमें जितनी भगवान की धारणा रहेगी, उतना अधिक उत्तम ।

मोटा प्रेरित सुमेल साधना

स्वजन दंपति : मोटा, इस बार हम दोनों साथ में सप्ताह मौन रखना चाहते हैं । इस विषय में आप खास कहने जैसा कहें तो अधिक अच्छा । घी का दीपक प्रज्वलित रखें ?

श्रीमोटा : तुम से रखा जाय उतना मौन रखें । लाचारी में बोलना पड़े तो उतना ही बोलना जितनी जरूरत हो । इन दिनों में नामस्मरण तथा भजन-कीर्तन हो सके उतना हृदय पर लक्ष रखकर किया करें । वातावरण बिलकुल प्रसन्न चित्तवाला रखें । पति-पत्नी के घर्षण कुछ भी न होने दें । दोनों व्यक्ति खूब प्रेमभाव से रहें और भावनापूर्वक नामस्मरण करें । जितना सातत्य बना रहे उतना उत्तम । हो सके उतनी जागृति रखने के लिए प्रार्थना है । इन दिनों में संपूर्ण स्मरण-ध्यान-धारणा-भजन-कीर्तन करते रहें । हृदय से चेतना के साथ जुड़े रहकर भावना का प्रपात बहाया करें । जीवननिर्माता जिसे माना है, उसकी धारणा जागे ऐसा प्रेमभाव बहाएँ रखने की विनती है । इन दिनों में तुम्हारा स्मरण **यह जीव** करता रहेगा यह सच बात है । यदि भाव, धारणा हृदयस्थ रहेगी तो उसकी प्रतीति तुम्हें होने ही वाली है, उसका भरोसा है वह जानो । दीपक रखने की आवश्यकता नहीं है ।

मूल अपने में

स्वजन : कोई भी व्यक्ति किसी भी कारण बिना हमारे साथ उल्टा व्यवहार करे तो 'उसका ऐसा स्वभाव है' – ऐसा मानकर हमें वह सब सह लेना चाहिए ?

श्रीमोटा : कोई भी जीवात्मा हमारे साथ जो कुछ भी वर्ताव करती है, वह उसकी प्रकृति या स्वभाव रूप से भले हो, किन्तु उसकी स्पर्श-भूमिका हमारे में ही रही है, यह बात निश्चित है । प्रत्येक जो कुछ बनता है, उसका मूल स्वयं है । जैसे पिंड में वैसा ब्रह्माण्ड में; वह आध्यात्मिक शास्त्र में सच है, वैसा ही व्यवहारशास्त्र में भी है । प्रत्येक जीव जिस जिस ढंग से हमारे साथ व्यवहार करता है या जिसे हमने उस ढंग से आचरण करने का कोई कारण दिया ही नहीं है तो वैसा आचरण करने के लिए उसे कौन प्रेरित करता होगा भला ? मनुष्य मात्र को यदि अपने में ही दृष्टि, वृत्ति और मन का झुकाव केन्द्रित एकाग्र करने होंगे तो उसे मात्र जिस तिस में उस स्वयं को ही देखना होगा और इस तरह सतत अपने में ही केन्द्रित रहना सीखना पड़ेगा ।

बालक के संस्कार

स्वजन : अब तो हमारा बेटा भी बड़ा हुआ है ।

श्रीमोटा : बालक के पाँच से आठ वर्ष तक का समय मानवजीवन में इतना उत्तम समय है कि उसका-बालक का समय निरर्थक न बीत जाय, उसे हमें ध्यान में

रखना होगा, इसलिए तुम भी बालक को संस्कार की भावना मिले ऐसा सुमेल बनाये रखें । परस्पर सद्भावना रखोगे तभी बालक को उस वातावरण से उत्तम संस्कार प्राप्त हो सकेंगे । मेरी इज़्ज़त तो तुम सबके हाथ में है। जितनी संभालोगे उतनी संभलेगी ।

गायत्रीमंत्र

स्वजन : गायत्रीमंत्र कहीं भी, कभी भी कर सकते हैं ?

श्रीमोटा : गायत्रीमंत्र शुद्ध चित्त से, एकांत में और शुद्ध ढंग से करना होता है । बाकी के समय में उसे प्रार्थनाभाव से, ज्ञानभक्तियोगभाव से अवश्य कर सकते हो। रोज़ रात को प्रार्थना दोनों व्यक्ति अवश्य करें । धुन, भजन आदि रोज़ साथ में करें । दोनों धार्मिक पुस्तकें भी पढ़े ।

जन्म-मरण में साथी - 'मोटा'

स्वजन : मोटा, मेरे एक मात्र छोटेसे बेटे का कुछ दिनों पहले मृत्यु हुआ, बहुत आघात लगा है । आपकी कृपा से ही वह मिला था और यह क्या हो गया ?

श्रीमोटा : मेरे सिर और पूरे शरीर में सब कुछ घूमता और उसी समय लगभग सारे वातावरण में स्थूल भी सारा घूमने लगा था । हेमन्तभाई उपस्थित थे । मैंने उन्हें ऊपर वर्णित कहा था । मात्र, वैसे होती हक़ीक़त नहीं कही

जा सकती । ऐसा भगवान का कानून है । उसके जन्म के समय और उसकी मृत्यु के समय **इस** शरीर ने उसके आघात सहन किये हैं । इतना भरोसा यदि तुम दोनों के गले उतर सकता हो तो तुम **इस जीव** पर श्रद्धा, विश्वास जीवित रखने में मदद करना । तुमने बहुत राह दिखलायी है । अब तो जीवन में जागो, देखो और चेतन दशा का अनुभव करो उतनी ही प्रार्थना है ।

मेरा कहना ऐसा नहीं है कि, 'मैं वहाँ होता तो वह जीव हमेशा उस शरीर में रहा होता ।' मेरा कहना तो यह है कि यदि मैं वहाँ होता तो उसके चारपायी से गिर जाने का जो भयानक निमित्त बना और उस निमित्त ने ही जीव लिया, वैसी गिरनेवाली बात शायद न हुई होती ।

मैं पहले तो तुम्हें तथा चेचकवाले बालक को खुल्ले में सोने ही नहीं देता । चेचकवाले शरीर को ऐसे सुलाते ही नहीं हैं । इसमें तो केवल मनस्वीपन था, ऐसा मानना है । शायद यह ग़लत भी हो, तो भी तुम्हें उसके साथ खुले में सोने ही नहीं देता । पर इसका अर्थ ऐसा नहीं कि वह बच ही जाता ।

ता. २५-४-४६ की शाम से उसकी नाजुक स्थिति हुई । उसने पानी पीना और स्तनपान करना बंद किया । उससे तुम्हारे बिंधते-दुखते हृदय को न देख सका । क्योंकि ऐसी करूणा का दृश्य देखना या अनुभव करना किसी के

भी भाग्य में न आये । इसलिए देर रात को प्रभु की प्रार्थना की; तुम्हारे पास धुन करवाई और भजन गवाया । उसके बाद साड़े छः बजे उसने स्तनपान किया और पानी भी पीया । इतना मेरे मन को तो बहुत ही आश्वासन मिला था । प्रभु ने इतना भी सुना, यह उसकी अपार कृपा थी, बाकी मेरे मन से तो वह जीव कहीं खो नहीं गया है । कर्म की रचना में या भगवान के उद्देश्य में कोई भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता । अतः उसके लिए अफ़सोस करने की आवश्यकता नहीं है । किन्तु प्रत्येक कर्म या परिस्थिति जीव के विकास के लिए है । इसलिए हमें सावधान करने तथा तुम्हारा कलंक दूर करने के लिए ही प्रभु ने तुम्हें वह भेंट रूप में दिया और ले लिया ।

तुम्हें संतान नहीं हो ऐसा है, ऐसी एक मान्यता थी और मान्यता भले ही फिर डॉक्टरों के कहने से बनी हो । किसी ने जानबूझकर उसे फैलाया था, ऐसा मेरा कहना ही नहीं है और हमें कभी मानना भी नहीं चाहिए ।

अनुष्ठान

स्वजन : अनुष्ठान अर्थात् क्या ? क्या करने से जीवन उच्च गति को प्राप्त हो सकता है ?

श्रीमोटा : अनुष्ठान अर्थात् जीवन को संपूर्ण रूप से और संपूर्ण भाव से समर्पण करने की विधि में आगे बढ़ना । सभी आग्रहमात्र को छोडने की उल्लासयुक्त तैयारी

जीव की चाहिए । किसी विषय की कोई आदत नहीं रहनी चाहिए । अमुक काम ऐसे ही करना चाहिए या ऐसे ही करना होगा इस अभिगम को भी छोड़ना ही पड़ेगा ।

जीव में एकमात्र सुमेलयुक्त सद्भावभरी भावना से जो भी मिले उनके साथ आचरण करने की तमन्ना रखनी पड़ेगी । और उन सब में स्वयं को दबाना, सहना पड़े, ऐसा तपस्या का भाव रखकर जीव को उसमें त्रास या ऊब की वृत्ति आये बिना... अथवा आये तो उसे ज्ञानभक्तिभाव के साथ समझाते हुए उसे रचनात्मक स्वरूप देने की सभानता एवं जागृति रखनी होगी । फिर **इस जीव** के साथ के श्रद्धा-विश्वास जीवन्त रखने के लिए उसमें एकभाव हुए बिना उद्धार होना कभी भी संभव नहीं है । ऐसे जीव में या जिसे स्वयं गुरु माने उसमें हृदय, मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार आदि वृत्ति से एकमात्र शुद्ध चैतन्य की भावना का सतत लगातार भाव सहज नैसर्गिक रूप से प्रगट हुए बिना जीव का विकास होना कभी भी संभव नहीं है ।

अभी तुम्हारे मन में **इस जीव** के विषय में बहुत भरा पड़ा है । कई तरंगों को मैंने देखा, जाना है और अनुभव किया है, पर जिसे अपना माना है, वह कुछ भी करे या माने तो भी वे मेरे अपने ही हैं । यह तो कुछ भी नहीं और ऐसा कोई संसार में मुझे कोई तुच्छ में तुच्छ

व्यवहार कर बदनाम करे तो भी मैं तो उसी का हूँ और उसी के हाथ में ही हूँ, उस तरह तुम मेरी हो। कितनी ही बार तुम्हें याद करके निश्चित हो शांति देने का प्रयत्न करूँ पर वैसा अभी नहीं हो पाता, पर तुम्हें अनुष्ठान करने का मन हुआ है, वह मुझे बहुत अच्छा लगा है ।

यह संसार ही तपोभूमि

स्वजन : मोटा, मेरा अनुष्ठान पूरा हो, फिर मुझे किस तरह आचरण करना चाहिए ?

श्रीमोटा : तुम्हारा अनुष्ठान हो उससे पहले मुझे तुम्हें बता देना चाहिए कि इसके बाद मार्ग कठिन हो जाएगा । जो कहा जाएगा, उसे करने की स्थिति में दिल को कठिन पड़ेगा । कितनी ही बार भगवान लोहे के चने भी चबवाएँगे ।

जो जो मिले हैं, यह भगवान की प्रसादी है और उनकी सेवा वही प्रभु की भक्ति ऐसी मात्र विचारधारा ही नहीं, पर हृदय, मन, चित्त, प्राण की ऐसी भूमिका तैयार करनी होगी । इसके अलावा मन-स्वभाव की पूर्ण स्थिति मात्र पकड़, आग्रह, आदत, मान्यता, धारणा आदि सब पलटती जाएगी । वह सब तोड़ने के लिए संसार में कृपाप्रसंग प्रभु दिया ही करेंगे । उस समय मन की चेतनाभरी जागृति साधक को रखनी होगी । अतः नम्र से भी नम्र रहना पड़ेगा ।

संसार तपस्या की भूमि है । भगवान की व्रजभूमि है । प्रभु के भावपारायण की अंतर भूमिका है, यह भाव हमें संसार में रखना पड़ेगा ।

तुम्हारा अनुष्ठान हो जाने पर तुम्हारा अधिकार तुम पर नहीं रह पाएगा । उस पर का अधिकारमात्र 'किसी'का हो जाएगा और जाने-अनजाने ऐसे ऐसे प्रसंग आएँगे कि तुम्हें उसे वह सौंपना ही पड़ेगा । तुम्हारे शरीर का अधिकार तुम्हारे घर का नहीं पर उस प्यारे प्रभु का रहेगा और वह प्रभु का मंदिर है, इस भावना से और उस ढंग से - उसे रोज़ रोज़ भावनाभक्ति, प्रेमधारणारूपी शृंगार से सजाना पड़ेगा । उस प्यारे को रिझाने के सारे प्रयत्न मन, हृदय, चित्त, प्राण से स्वभावतः ही करने पड़ेंगे । **जो जो मन–स्वभाव को पसंद नहीं होता है, वह सब करने के प्रसंग उपस्थित होंगे । उस समय भगवान साक्षात् कृपा करने पधारे हैं, ऐसा सजीव भाव जिसके हृदय में जाग्रत होता रहेगा वही जीव पार होने की संभावना में आ सकता है ।**

अनुष्ठान अर्थात् जीवन को रूपान्तरित करने का प्रभुकृपा से सूक्ष्म प्रयत्न । तुम्हारा और **इस जीव** के साथ का संबंध है, वह आज तुम चाहो तो अभी छोड़ सकती हो। पर फिर ऐसा हो पाना संभव नहीं । तुम मन, चित्त, हृदय, प्राण से वैसा करोगी तो भी वह नहीं हो सकेगा । बिलकुल

परतंत्रता की भूमिका में उस समय से कदम रखे हैं, ऐसा सचमुच में मानना है । मानना है कि यह एक विधानमात्र नहीं है । ऐसा ही हो जाने की स्थिति हुआ करेगी । जीव इच्छा करे या इच्छा नहीं करे, तब भी वैसी ही परिस्थिति उत्पन्न हुआ करेगी । हमारा मानो कहीं कुछ चल ही नहीं सकता । मानो हमारा कोई हिसाब ही नहीं ।

स्वजन-बहन : ऐसा मात्र स्त्री को ही आचरित करना है और पुरुष को कुछ भी नहीं ?

श्रीमोटा : मर्द की बात मर्द जाने । मर्द के जीवन में भी ऐसा हुआ करता है । जीवमात्र उस समय ऐसी सभानता में नहीं रह सकते, इसलिए इसे ऐसा ज्ञानभक्तिपूर्वक का अनुभव नहीं होता । बाकी, तुम्हें जैसा कहता हूँ, उसी तरह मर्द जीव का भी हुआ करता है । जीवन की साधना में मर्द-स्त्री-जीव का कुछ अंतर नहीं, पर जिस जीव को जो परिस्थिति मिली होती है, उसी अनुसार उसका धर्म रहा करता है और उस धर्म का अनुसरण करके प्रत्येक जीव को चलना पड़ता है ।

जो **जीव** ज्ञानभक्तिपूर्वक ऐसे मोड़ पर अपनी जागृति रखता है, वह अवश्य पार हो जाता है । जो **जीव** उसमें परवशता से, त्रास से, ऊब से, क्लेश से, दुःख से या ऐसी वृत्ति में 'हाय ! हाय !' करते हुए कर्म में प्रवेश करते हैं, ऐसे **जीव** अपने जीवन को कुचल देते हैं और जीवन के

सत्य की हत्या कर देते हैं । जीवनस्वत्व को निर्माल्य स्थिति में परिवर्तित कर डालते हैं । स्वयं अपने आप **जीव** को अधिक अज्ञान दशा में धकेलते जाते हैं । ऐसा परवशता से कुछ करने में **जीव** किसी के प्रति वफ़ादारी, प्रामाणिकता नहीं बतलाता है । उल्टा वफ़ादारी-प्रामाणिकता-प्रेम आदि भावना का उसमें तो बिलकुल अभाव होता है । प्रत्येक **जीव** के सिर पर आये कर्म तो करने पड़ते ही है। इसमें से कोई **जीव** खिसक सकता ही नहीं छोटेसे । अतः जो करना पड़ेगा, जिसमें से चाहे तो भी छूट नहीं सकते, उस कर्म को प्रेमभाव से करने में हमें क्यों न उद्यत होना चाहिए ? इसी में ही जीव का कल्याण-मंगल है । ऐसा जब मन में आये, तभी अनुष्ठान का कुछ अर्थ होगा ।

इसप्रकार सभी **जीव** करते ही हैं ऐसा मेरा कहना नहीं है । अभी मेरी इच्छा के अनुसार मुझे संतोष हो उस अनुसार कोई भी नहीं कर सका है । इस विषय में मेरी शिकायत तो एक मात्र प्रभु से है । पर तुम्हें अनुष्ठान में बैठने की इच्छा हुई है, वह मेरे मन के लिए आनंद की बात है ।

वहाँ तुम्हारी सासूजी आयी हों तो उनके आशीर्वाद ले लेना । संमति ले लेना । उनका कामकाज प्रेमभाव से किया करना । **कोई हमारे विषय में क्या सोचता है, विचार करता है, उसका विचार मन में लेश मात्र न आने**

देना । ऐसा होने से सजग हो जाना । किसी का भी काम प्रभुभाव से, प्रेमभाव से करने पर हमारा हृदय हलका रहता है और सामनेवाले जीव का भी कल्याण होगा । वह कैसा भी क्यों न हो, उसके साथ हमें कोई वास्ता नहीं । हमारा जो धर्म उसके साथ जैसा हो, उसे प्रभुभाव से करने में पीछे न रहें, इतना हो सके तो हमें थोड़ी भी आँच न आ पाएगी ।

संसार जहाँ प्रभु का है और हम यदि उसके हो सकें हो तो संसार तो बेचारा है । उसका भार क्या है ? पर संसार में और जीवमात्र में विद्यमान प्रभु को पहचानना, वह काम जैसा तैसा नहीं है । ऐसा होने से पहले तो कठिन से कठिन अग्निपरीक्षा से गुज़रना होगा ।

मुक्तात्मा का रहस्यमय प्रवेश

स्वजन-बहन : पर **मोटा** । सच कहती हूँ । अभी भी आपके विषय में बहुत से विचार आया करते हैं ।

श्रीमोटा : मेरे विषय में बहुत से विचार करने का जहाँ तक मिट न जाय, तब तक कुछ सिद्धि मिलनेवाली नहीं है । रोज़ के होते सकल कर्ममात्र में, विचार में, वृत्ति में, सबंध में जिसे जीवन का निर्माता मानना है, उसमें चैतन्य शक्ति का जाग्रत भाव यदि रखा जा सकेगा तो सारे आधार की शुद्धि होती जाएगी और तभी आत्मा की गति के कुछ अनुभव अवश्य होते जाएँगे ।

यह जीव तो पामर है । जंतु से भी तुच्छ है । पर वह जो कुछ करे उसमें यदि भागवती जीवन का उद्देश्य धारण करते हुए उसमें चेतना का संपर्क, स्पर्श हमारे आधार में प्रवेश कर सके, ऐसी जाग्रत भावना हृदय से बनाए रख सकें तो भी बहुत बड़ा अंतर हो सकता है । इस जीव के संसर्ग से दुःख तो लिखा ही है ऐसा मान लें । तपे बिना या तपाये बिना कोई भी आकार निर्मित नहीं हो सकता । यदि आकार देना हो तो तपना तो अवश्य पड़ता है । इसलिए यदि तुम्हें उस मार्ग पर जाने का मन हो तो तपना-दुःख, क्लेश, संताप, संघर्ष, उलझन, द्विविधा, विघ्न, कठिनाइयाँ - अनेक सगे संबंधियों के ताने, उनकी तरफ से संपूर्ण अवगणना - यह सारी प्रसादी मिलेगी । पर इसमें जो जीव भगवान की जाग्रत कृपा को अनुभव करने की दृष्टि, वृत्ति, अभिगम रख सका तो वह जीव भगवान का भक्त अवश्य बन ही गया ऐसा समझना है ।

इस जीव में कुछ **उस**की कृपा से दिव्य शक्ति है, ऐसा प्रत्यक्ष साबित हुआ है । कितनी ही बार उसके स्वजनों को प्रभु ने कृपाकर दिखलाया है । कितना उन्होंने अपने में उतारा है, यह तो वह खुद ही जानें । पर तुम्हें प्रसव की बेला में **इस जीव** को कितनी वेदना थी, वह मेरे मुँह की बात नहीं है, पर दूसरों ने स्वयं देखा है और

तुम्हें उस विषय में लिखा भी है और पुत्र के शरीर में से जीव की बिदाई के समय इस जीव के शरीर की भी कैसी स्थिति हो गई थी, वह भी किसी ने स्वयं देखी है । यह सब कोई ग़प्पें नहीं हैं । इसके अलावा ऐसा तो कितना ही हुआ होगा । अपने मुँह से गिनाना यह तो साफ़ अधमता ही है । पर न जाने क्यों जीवनसंसर्ग में आये जीव को ऐसे प्रसंगों में से उठने जैसा भाव उनके जीवन में प्रवेश नहीं कर सका है । यद्यपि उसका मुझे दुःख नहीं है । आज या कल मेरे लिए प्रश्न नहीं है । वह तो होनेवाला ही है । स्वजनों के हाथ से – मन से अवगणना पाना यह तो इस संसार पर हो गये अनेक संतभक्त ज्ञानीपुरुषों के जीवन का सजीव, बजते हुए घण्ट जैसा अनुभव है और यह आवश्यक भी है ।

आचार-विचार

स्वजन-बहन : अनेक बार मुझे उच्च कक्षा के विचार आते हैं, पर उसके अनुसार आचरण नहीं हो पाता – यह बड़ी उलझन है ।

श्रीमोटा : विचार का आचरण के साथ सुमेल होने से ही विचार का भाव प्रत्यक्ष होता है । इस युग में, इस काल में विचार बहुत आगे बढ़ गए हैं । किन्तु उनका आचरण तिनका जितना भी नहीं होता । इससे आज संसार में वैधव्य प्रवर्तमान है ।

तुम भगवान का नाम लिया करती हो और उनकी प्रार्थना करती है, इससे तो आनंद होता है, पर उसकी गूँज यहाँ बैठे-बैठे हृदय में आरपार उतर जाए, तब तुम्हें सही मानूँ - अथवा तुम्हें ऐसा अनुभव हो तो सच है । मनुष्य को अपने जीवन का एकमात्र हृदय के अनुभव पर से अपने माप-लक्षण की समझ आ जानी चाहिए । स्वयं अपने को ही योग्य रूप से पहचानने लग जाँय तो वह संसार को भी पहचान सकता है और माया को भी पहचान सकता है । फिर वह जीव के नकारात्मक अभिगम में कभी नहीं पड़ा रहेगा । ऐसा रुख़ उत्पन्न होते ही उसे बिच्छु के डंक जैसी वेदना होने लगे, तब स्वयं अपने में निष्ठा पाता जाता है, ऐसा मानना और जानना ।

भावना भरा जीवन

स्वजन-बहन : भावना भरा जीना बहुत कठिन लगता है, इसका क्या कारण होगा ?

श्रीमोटा : तुम्हारे सभी के जीवन पर ही मेरे सच्चेपन का आधार है । तुम दीप्तमान करो तो वह दीप्त होगा । तुम मारो तो उसे मार भी सकते हो । भावना से जीना यह दुष्कर है पर सही जीवन तो यही है, ऐसा जीवन जीने में भले कठिन लगे । यह कठिन लगे वहाँ तक तो जीवस्वभाव है ऐसा जानो । इसलिए दु:ख से कभी हार न जाँय । 'हा ! रे ! भगवान !' ऐसे शब्द सुनने पसंद

नहीं है । अतः हम सब कुछ भगवान के लिए ही कर रहे हैं, ऐसी भावना कर्म करते समय जाग्रत रखनी है और वह सब उसे ज्ञानभक्तियोगभावपूर्वक समर्पित करते रहना है ।

'जीव' की लाचारी

स्वजन : आपके साथ हृदय का भाव अखण्ड नहीं रहता । यही हमारी कमी है न ?

श्रीमोटा : तुम्हारे हृदय का प्रेमभाव भरा सद्भाव सजीव हो तो 'गौरव' होगा ही । जो **जीव** के प्रति की हृदय धारणा से जीवन का ध्येय फलित होने का सोचा है, वह **जीव** के प्रति हृदय की धारणा में जैसे-जैसे सजीवता प्रगट होने का अनुभव होता हुआ लगे तो ही उसमें से रसनिष्पत्ति हो सकती है । जहाँ जहाँ रस वहाँ वहाँ जीवन । हमारा संबंध ऐसे सहजभाव से हो सके तभी जीवन की मज़ा, जीवन की मस्ती, जीवन का आनंद पा सकते हैं ।

संक्रांतिकाल में संघर्ष, मुठभेड़, आकुलता, बेचैनी, उलझन, टकराव, घबराहट, मथन, व्यग्रता आदि पैदा होते ही हैं । किन्तु जीवन की ऐसी पल में जो **जीव** का दृष्टिबिंदु जीवन के ध्येय के प्रति लगातार दृष्टि केन्द्रित रह सकती है , उस पल में उसके मन की दशा उसे कभी भी जकड़ नहीं सकती । उसके ऐसे फैले पंख की फड़फड़ाहट उसे जकड़ी दशा में रहने भी नहीं देगी । अच्छा-खराब यह प्रत्येक में है, जो एकमात्र उसे ही अनुभव करने को

केन्द्रित, एकाग्र, प्रेमभक्तिभरी दृष्टि, वृत्ति और अभिगम बनाये ही रखता है, उसे किसी में भी ध्येय के प्रत्यक्ष भाव बिना कुछ सूझनेवाला या लगनेवाला नहीं है । ऐसा मन का रूख़ जिस **जीव** का हो उसे तो फिर कुछ दूसरा करना नहीं होता ।

स्वयं का ही ख़याल

स्वजन-बहन : मैं तो मुझ से हो पाती सेवा करती हूँ, पर सभी में मुझे ही जवाबदारी देते हैं । उन्हें तो कुछ भी कहते नहीं ।

श्रीमोटा : तुम्हें तो अधिक प्रेमभाव से सेवा करने का दिल रखना चाहिए और खूब नम्रता रखनी चाहिए । जो झुका वह प्रभु को भाया । भले ही कोई नम्रता के शुभ आशय को न स्वीकारे । इससे हमें क्या ? हमें तो प्रेमभावपूर्वक अपने ही कल्याण के लिए ही करना है । सामनेवाले का ही जो सोचता है वह अपने को बैठता हैं । तुम्हारे हाथ में मेरी लाज-इज़्ज़त रही है । तुम चाहो तो तार सकती हो । तुम्हारे आचरण से ही मेरी कीमत संसार में होनेवाली है । तो तुम कहोगी, 'मेरे पति के कारण नहीं ?' तो मैं कहूँगा 'नहीं' । बड़ी नहीं । उसके हृदय में चेतना, प्राण, शक्ति भी जागनेवाली होगी तो वह भी तुम्हारे हृदय के भक्तिभाव से वह होगी । उसमें तुम प्रेमभक्तिभाव से एक हृदय हो जाओ और उसमें एकरस हो जाओ, ऐसी

इच्छा रखता हूँ । उसकी प्रत्येक सूचना तुम प्रेमभक्तिभाव से स्वीकार कर लो ऐसा माँगता हूँ । उसमें हमारा–तुम्हारा और मेरा कल्याण हो जाएगा । मेरा इसलिए कि तुम्हारा जीवन परस्पर ऐसा गाढ़ मिलनसार और एकरस भाववाला होने पर, तुम्हारे जीवन का भाव ऊर्ध्वगामी होते ही मेरा मस्तीपन कोई निराले प्रकार से व्यक्त होनेवाला है ।

अलग रहना

स्वजन : कभी कोई व्यक्ति मेरे पास अपनी बात करता है, तब उसमें मेरा मन नहीं लगता । यह योग्य तो नहीं है न ?

श्रीमोटा : हमारे आगे यदि कोई अपना दिल खोलना चाहे तो हम सहानुभूतिपूर्वक सुनें सही, जिससे सामनेवाले का भार कम हो, पर उसके साथ हमे हिलमिल न जाँय और वास्ता न हो तो उसके विचारों की कड़ियाँ हमें नहीं जोड़नी चाहिए ।

मन तो ले जाने का प्रयत्न किया ही करेगा पर हमें आत्मा की शक्ति पैदा करनी है । यदि मन के मोड़ों के ताबे में आ जाएँ तो कैसे आगे बढ़ पाओगे ? **जितना मन के साथ अलग रहकर-भिन्न होना सीख सकें उतनी आत्मा की शक्ति खिलती जाएगी ।** यह सब बोलना सरल है, उपदेश तो कोई भी व्यक्ति दे सकता है, पर जीवन में और आचरण में उतारना बहुत बड़ी झंझट है । जीवन में चरितार्थ कर सके

वही आत्मवान् हो सकता है। हमारे जीवनसंबंधों का भी यदि कोई अर्थ हो तो वह इसीलिए ही है ।

विपरीत स्थितियों के अलावा जीवन को आकार नहीं दिया जा सकता । इसलिए विरोधी प्रवाह (पड़ी आदत से विरोधी प्रवाह) में जीवन को ले जाने से ही जीवन की उन्नति हो सकती है, उसके बिना नहीं । ऐसा जीवनरूपी यमुना की गति उल्टे बहाव में ले जाने की शक्ति साधना के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है; वह भी अवश्य ही । भगवान की कृपा तो प्रत्यक्ष रूप से उस जीवन को उसमें मिलाना चाहती है । उसके साथ है ही, पर मनुष्य अपने सजीव अनुभवों में उसका दर्शन करना नहीं चाहता । यह हमारा दुर्भाग्य है । इसलिए हमें तो उसकी कृपा हमारे साथ आगे और पीछे खड़ी ही है, यों मानकर उसे आधार रख मृत्युपर्यन्त प्रयास करते ही रहना हैं । उसके बिना चारा नहीं है । स्वयं मरे बिना कभी भी स्वर्ग नहीं जाया जा सक्ता है ।

भगवान का नाम सतत लिया जाय इतनी शक्ति रखो । दूसरी तो क्या विनंती करूँ ? तुम्हारी पत्नी के शरीर की प्रेमभावपूर्वक भगवान-धारणा सेवित कर, पूरी संभाल-देखभाल करने की विनती है । कोई भी कर्मप्रारब्ध बिना ऐसा संबंध नहीं मिलता । अतः ऐसे कर्मप्रारब्ध के प्रवाह की प्रवर्तमान जीवन में से असर चली जाय ऐसे हमें आचरण करना है ।

सच्ची मानवता

स्वजन : मोटा, मैं घर में सभी के साथ समान भाव से व्यवहार करता हूँ । तब भी मेरी पत्नी को लगता है कि मैं उसके साथ अन्याय कर रहा हूँ । मुझे अनेकबार ऐसा लगता है कि मेरे कार्य के विकास में मेरी पत्नी बाधक है ।

श्रीमोटा : समान भाव का व्यवहार जो करे या करता हो उसका कोई दुरुपयोग करेगा तो उसका अकल्याण होगा। समान भाव रखनेवाला स्वयं का ही कल्याण सोचकर सभी कुछ करता रहता है । संसार में प्राप्त परिस्थिति की जिम्मेदारी की ओर जो मनुष्य आँख मिचौली करता है, वह बहादुर नहीं, कायर है । उसमें साहस और हिंमत नहीं है । **संपूर्ण रूप से जिम्मेदारी निभाकर जो प्रेम प्राप्त हो, उसे प्रेम की प्रसादी के रूप में भोग लेना वही सच्ची मानवता है ।** ऐसा जीवन भोगना है ? वैसा जीवन जीने की शक्ति न हो तो भगवान का मार्ग सरल नहीं है ।

हम अपनी पत्नी-माता-पिता दूसरे संबंधों को नकार कर भगवान को प्राप्त नहीं कर सकते ।

तुम्हारे में निरी बेपरवाही है, यह कोई अच्छी निशानी नहीं । उसे तुम अभी तक कोई अच्छी भूमिका मानकर बैठे होंगे, पर वह भूल है । तुमने अपनी पत्नी पर कम अन्याय नहीं किये । पत्नी को भी प्रेमभाव से समझा समझाकर

काम लेना होता है । उसे तिरस्कृत करने से काम बननेवाला नहीं है । उसे एक तो शरीर का दुःख, मन में भूख; अतः दोनों ओर से पिसाती है । इसलिए शांति रखें । फिर वह हमें बाधा रूप बनती है, ऐसा मानना भी भूल है । हमारी प्रकृति ही हमें अनेक कठिनाइयों में रख उसके द्वारा खेल खेलती है, ऐसा होना संभव है । वह तो बेचारी एक निमित्तमात्र है । हम जो करते हैं, वह किया करें । डिगें नहीं और उसे समझाएँ ।

नामस्मरण के सिवाय दूसरा कोई सरल साधन संसार में कहीं नहीं है । जिससे इतना न हो सके, उसे भगवान की आशा छोड़ देनी चाहिए, इसमें जो प्रेमपूर्वक लगे रहता हैं, उसे पीछे हटने की बारी कभी नहीं आती । इसलिए सतत लगे रहना ।

संसार में हम अकेले नहीं हैं । **अतः उससे प्राप्त संसारजन्म से मिला संबंध ही हमारा भगवान है । इसमें भगवान जागे, ऐसा जो कुछ कर्म हो सके, उसीका नाम सच्ची भक्ति है ।** वह भक्ति ज्ञानभाव से तुम दोनों किया करो ऐसी प्रार्थना है ।

मोटा के विषय में अन्यथा विचार

स्वजन : मेरी पत्नी मौन-एकान्त में जाय तो उसमें कुछ समझ पैदा होगी कि नहीं ? हम ने आप में प्रगट हुए चेतन का अनुभव किया है, फिर भी आपके विषय

में अन्यथा विचार क्यों आते होंगे ?

श्रीमोटा : जीवन की समझ की बात में और पति-पत्नी के जीवनव्यवहार की बात में परस्पर समझ लेने की आवश्यकता है । मौन एकान्त में रहने से और नाम लिया करने से ही मात्र जीवन में समझ पैदा होने वाली है, यह सच होते हुए भी जीवन परस्पर जीने की सुमेल की भावनापूर्वक की समझ यदि न जाग पाई हो तो तो मौन एकान्त और नामस्मरण कुछ सफलता नहीं दे सकते ।

मेरे तो तुम दोनों अंग और हृदय हो । पर तुम दोनों मेरा मार्ग सरल नहीं कर देते हो । मुझे मदद करनी तो दूर रही उल्टे नकारात्मकता मन में रहा करती है । मैंने कुछ भी हानि नहीं पहुँचाई, तब भी अभी **इस जीव** के विषय की अन्यथावृत्ति क्यों तुम दोनों के मन में से नहीं जा रही है ? **मैंने पूर्वजन्म में तुम्हारे जीवन को बहुत सताया होगा ऐसा मानूँ ? मुझे ऐसा भी नहीं लगता । उल्टे तुम दोनों मेरे बड़े से बड़े दुश्मन थे । अनेक बार तुम्हें बचाया, तब भी तुमने दुश्मनावट नहीं छोड़ी थी । दोनों पति-पत्नी थे, ऐसा कुछ नहीं । उस जन्म में भी तुम्हारी शत्रुता का पार न था । उसका अंश तुम में रहा है । इसलिए मेरे प्रति तुम्हें ऐसा करवाता है । यद्यपि इस हक़ीक़त को बुद्धि की भूमिका में कितना मानें वह बुद्धि का काम है ।** तथापि इस पर आधार कुछ भी नहीं रखें,

पर इतना तो सही कि तुम्हारे दोनों का भाव अभी **इस जीव** के प्रति पूरी तरह जाग्रत न ही हो पाया है । तुम्हारे मन में कुछ हो या तुम्हें हानि पहुँचाई हो तो वह मुझे स्पष्ट कह देने में कोई भी संकोच न रखें ।

सच्ची रक्षा

स्वजन-बहन : मोटा, आज मुझे आपको राखी बाँधनी है ।

श्रीमोटा : राखी तो मुझे तुम्हें बांधनी है । तुम भला मुझे कहाँ बाँधोगी ? मुझे बंधना तो है ही, पर उस भावना के साथ, यदि सकल कर्म, व्यवहार, आचरण और प्रतिदिन होते सकल कर्म में भावना और चेतना की धारणा जाग्रत रहा करे तो ही ऐसा बंधना पसंद है । बाकी मुर्दे के साथ बंधवाना तो कष्टदायी बना करता है । मुझे तो अमुक जीवों के शरीरों के साथ बंध जाने के लिए अवश्य ही भगवान ने संयोग किया है । क्योंकि **जीव** रागद्वेष की भूमिकावाला होने से उसके साथ प्रभु की भक्ति, उसमें राग उत्पन्न करने में भी उस भूमिका पर उतरकर और इस तरह प्रभु के कृपाबल के आश्रय द्वारा आचरण करता है और वैसा भाव इस **जीव** का पाने के लिए जो उपाय या साधन उसे वह स्फुरित हो साधन का आश्रय वह भगवान की प्रेमभावकृपा धारणा से लेता रहता है । पर यदि **जीव** इतना और ऐसा उत्कट राग भी उसमें पैदा न कर सके तो उस जीव का

ऊपर उठना संभव नहीं हो सकता । जीवन में जो मिला है, उसमें भी यदि प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, भक्ति ज्ञानपूर्वक के हम जागृत न कर सकें तो जीवन मिथ्या ही बीत जानेवाला है ।

स्वजन : इस जन्म में पति-पत्नी के रूप में मिलन हुआ हो, तब भी अन्य के प्रति आकर्षण या राग जागे यह पूर्वजन्म के कर्मप्रारब्ध का ही परिणाम होगा ? उस समय कैसा आचरण करे ?

श्रीमोटा : पति-पत्नी ये दो अलग देह हैं । **इस** जन्म में मिलना हुआ है, उसके पीछे कर्म का हेतु है । इसतरह से मिले **जीव** यदि अपनी भावना को परस्पर में एकराग रूप, एकभाव और एक संस्कार से न बन सकें तो कर्म के वैसे लेनदेन खड़े ही रहनेवाले हैं ।

एक मनुष्य को यदि उसके **इस** भाव में कोई इतर के प्रति रागादिक वृत्ति जन्मी तो वह भी कर्म का ही प्रारब्ध हो सकता है । मनुष्य वहाँ पर **जीव** की प्राकृतिक वृत्ति को यदि मोड़ना चाहे तो उसमें वह पतनशील होगा, क्योंकि जिसके लिए योग्य साधन कर्म विधान परिणाम से मिला, उसी उद्देश्य के लिए जीना हो और दूसरी ऐसी वृत्ति जन्म लेना वह तो पूर्वकर्म के संस्कार के उदय का परिणाम है, ऐसा समझकर **जीव** को वहाँ से वृत्ति प्रयत्नपूर्वक हटानी होती है । जिस जिस कर्म के फल से जिस तरह

का संबंध **इस** जन्म में मनुष्य को मिला हो, वैसी भावना से ही उसके साथ उस ढंग से ज्ञानपूर्वक आचरण करना है ।

स्वजन : तो क्या किसी **जीव** के साथ मित्रता प्रेमभाव न बढ़ाएँ ?

श्रीमोटा : करें । पर वहाँ इतना देखना है कि जो कर्म परिणाम के नियम से मिले हैं, उनके साथ जो भावयुक्तयोग्य या व्यवहारयोग्य है, उसके ही उपयुक्त वह है कि नहीं, ऐसा तटस्थापूर्वक जाँचें और दूसरा जो कुछ दूसरे **जीवों** के साथ हो वहाँ कहीं जीव या मन चिपकने न लगे, वह तो जीव को लक्ष्य में रखना ही है । मनुष्य कर्म में बँधता ही रहता है । कर्म के हेतु के लिए जो जो संबंध जिस ढंग के जिस प्रकार भोगने मिले हैं, उस ढंग से वहाँ आचरण करने पर भी यदि मात्र प्राकृतिक वृत्ति से वह सब भोगने जाएगा तो वह भी अनुचित ही है । संसार ही भोगने के लिए है, यह सच है, किन्तु वैसी भोगने की स्थिति कब आती है, उसे कोई नहीं सोचता । समस्त विश्व यज्ञरूप है, उसी तरह जीवन को यज्ञरूप बनाकर, जीवन को न्योछावर करने के बाद जो जीवन की भूमिका तैयार हो, उस स्थिति में जो कुछ भी प्रारब्ध विषयक अवशेष रूप रहता है, भोगने के लिए उस-उस समय सहज रूप से **जीव** को प्रभु परम कृपा करके

दिखाते ही रहेंगे । उस समय की **जीव** की कक्षा कोई अलग ही प्रकार की होती है । उसे समझने जितनी हृदय में ज्ञानयुक्त भक्ति जागृत बनी रह पाएगी तो हमें अपने में अपनी चेतना स्फुरित होती ही रहेगी ।

स्वजन : नामस्मरण की महिमा अब धीरे धीरे समझ में आ रही है सही । साथ ही मैं आपको भी याद करता हूँ और दृष्टि के सामने प्रगट करता हूँ ।

श्रीमोटा : नाम की महिमा तो अनुभव से समझ में आए तो आए । बुद्धि की समझ उसके लिए बिलकुल बेकार है ।

तुम्हें उसकी महिमा में श्रद्धा होती जाती है, यह तो बहुत आनंद की बात है । आनेवाले मौन की भूमिका तुम दोनों बनाते रहो तो बहुत ही आनंद होगा । उसके लिए तुम दोनों के बीच में परस्पर सुमेल भावना प्रेमभाव से युक्त होनी चाहिए । पुरुष और प्रकृति दोनों चेतना के ही विभाग हैं । वे एक दूसरे के आधार बिना स्वतंत्र नहीं है। इसीसे वे एक दूसरे में निहित रहते हैं । इससे वे एक दूसरे से कभी भी अलग नहीं हैं, ऐसी भावना दृढतम करते हुए एकरागता दोनों के हृदय में पैदा हो और दोनों का प्रत्येक प्रसंग में एक ही विचार, एक ही भाव प्रगट होंगे तो ही सतत प्रसरित होना बन पाएगा ।

जो निर्णय करें यदि मरण आये फिर भी पालन

करेंगे तो ही निश्चय बल चेतनवन्त प्राण जागेगा । नामस्मरण के साथ-साथ जितना सद्‌भाव, सद्‌प्रेम एवं सद्धर्म जाग्रत रहा करें या बने रहें और नामस्मरण में प्राणवान श्रद्धाविश्वास प्रगट हो तो उसका तत्काल लाभ हो रहा है **जीव** अनुभव कर सकता है ।

इस जीव का बहुत उत्कट प्रेमभाव से रोज़ सुबह उठते और रात के सोने से पहले एकाग्र हो चिंत्वन करें, उसे मन, दृष्टि के सामने जीवन्त किया करें तो वह स्वयं तादात्म्यता के क्षणों में तुम्हें प्रत्यक्ष भी दीखेगा । ऐसा अनुभव जब होगा, तभी सच्ची श्रद्धा, विश्वास उसमें जाग पाएँगे ।

देह के दर्द को अधिक महत्त्व न दें । महत्त्व तो हृदय का भाव कैसे जीवंत हो और प्रत्येक कर्म में प्रेमभाव कैसे जीवंत रहे तथा प्रत्येक कर्म क्यों एवं कितना और कैसा सद्‌भाव से होता जाता है, उसमें ही दिया करना है, उसे ध्यान में रखें ।

मौन-एकांत के समय

स्वजन : मेरी पत्नी का मौन-एकान्त प्रारंभ होनेवाला है । उसके लिए विशेष सूचना है ?

श्रीमोटा : नौ दिन में रात आठ से नौ बजे तक मानो स्वयं अनुष्ठान करना हो ऐसी सारी तैयारी करके सोयें और 'मोटा' वहाँ उपस्थित हैं, ऐसी भावना हृदय में

एकाग्रभाव से रखें ऐसी प्रार्थनाकर सोयें और स्वयं 'हरि:ॐ' 'हरि:ॐ' मन में ज़ाप करते रहो । उस अवधि का अनुभव लिखते रहें । इक्कीस दिन का मौन रखें और उस अवधि के अनुभव को लिख लें । बाहर आने पर उस लिखित अनुभव को मुझे पढ़ने भेज दें । मैंने उसे कहा है 'तुम स्वयं **मोटा** को दृष्टि के सामने जीवंत करके '**हरि:ॐ हरि:ॐ**' बोलते बोलते कर्म करती रहना । 'मोटा' को तुम स्वयं प्रत्यक्ष देख सकोगी । तो ही तुम्हें हृदय में पक्का भरोसा हो जायगा । **मोटा** में जो चेतनाशक्ति–प्राण है, वे तो श्रीभगवान के हैं । **मोटा** का तो कुछ भी नहीं है । उसके शरीर के हावभाव तो प्रारब्धवश होने पर भी उसके भोगने की दशा में जो जो **जीव** का संबंध है, वह **जीव** की वृत्ति भी ऊँचे आये बिना रह सकती ही नहीं । पर वह तभी हो सकता है कि दूसरे सामने के **जीव** में अपनी भावनात्मक, चेतनात्मक भावना उच्च प्रकार की जाग्रत होती जाती हो ।

उसके मौन के दौरान में शरीर से भले ही अलग हूँ और शरीर मुंबई में होने पर भी वहाँ रहा करेगा । ऐसा सच मैं मात्र कल्पना से नहीं कहता । पर **इस जीव**ने प्रभुकृपा से वैसा प्रयोग का अनुभव किया है और वह सिद्ध भी हुआ है एवं उसका प्रमाण भी है । किन्तु ऐसी श्रद्धा तुम में अभी जाग्रत नहीं हुई है । इसलिए ऐसा तुम्हें

नहीं लगता । बाकी मेरे पक्ष से तो वहाँ प्रत्यक्ष उपस्थित रहने का प्रयत्न होगा ही; पर मानो कि वैसा अनुभव हो तो भी हमारे रागद्वेष संपूर्ण रूप से हटें और वृत्तिविचार की भूमिका सात्त्विक हुआ करे तो ही उस अनुभव का अर्थ है ।

सभानता की कौंध

स्वजन : मोटा ! अब काम करते हुए भी हृदय में लक्ष बना रहता है और वह काम मेरे में रही हुई किस वृत्ति को प्रबल करता है तथा यह योग्य है या नहीं ऐसी सभानता भी जागती है । यद्यपि ऐसी अवस्था टिकती नहीं है ।

श्रीमोटा : ऐसी समझ प्रत्येक कर्म करते समय कितनी जाग्रत रहती है यह देखते रहना । ऐसी समझ प्रत्येक कर्म करते समय जाग्रत हो सके तो जानना **जीव** की गति अवश्य उच्च आध्यात्मिक प्रदेश में प्रवेश करती जा रही है और ऐसा आत्मविश्वास होते या जागते, कर्म करते समय हमारी जागृति सविशेषरूप से बलवान होती जाती है । यदि ऐसी जागृति बलवान होती जा रही है, ऐसा हम अनुभव कर सकें तो फिर कल्याण हो ही रहा है – ऐसा प्रत्यक्ष जानें । ऐसे **जीव** को फिर कल्याण विषयक कोई भी उलझन किसी समय मन में आती ही नहीं । प्रत्येक दशा के प्रत्येक लक्षण पहचानते रहें । ऐसा जानते हुए प्रत्येक कदम जीवनविकास के लिए रचनात्मक दिशा में है कि नहीं उसे जानें, अनुभव करते रहें, ऐसा

जीव साक्षात् आत्मा के स्वरूप में ही प्रगट होता जाता है । ऐसा स्वयं ही प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है ।

रुचि न जागने का कारण

स्वजन : नामस्मरण होता है पर उसमें चाहिए उतनी रुचि नहीं जागती । उसका क्या कारण है ?

श्रीमोटा : नामस्मरण में एकदम कोई रुचि न जागे । उसका सतत एक-सा अभ्यास होता रहे तो उसमें से रुचि अवश्य जगेगी । हम किसी के परिचय में आये बिना जैसे उसके साथ प्रेम नहीं जग सकता वैसे ही इसका है ।

सभी नकारात्मक **जीव**स्वभाव की प्रवृत्ति या वृत्ति उठे उसके वश न हों । उसे गुज़रने दें । हमें साक्षी जैसे तटस्थरूप से रहना है । ऐसा सजग अभ्यास विकसित करने की बहुत आवश्यकता है ।

खूब मस्ती और आनंद से नामस्मरण करते रहें और उसमें कहीं शोक, ग्लानि व्याप्त न हो उसे देखें ।

'वर' अर्थात् क्या ?

स्वजन-बहन : मोटा ! आप मेरे वर विषयक कुछ समझा रहे थे । वह क्या था ?

श्रीमोटा : हमारा 'वर' यह कोई शरीरधारी जीव नहीं है । पर उसमें जो भगवदीय चेतना है, वह हमारा 'वर' है । हमें उसे खुश करना है । यह वर हमारा उसे रुचे उस तरह आचरण करें तो ही प्रसन्न होगा । हमारा

वर तो श्रीभगवान है । श्रीभगवान को भगवान की तरह देखें तो ही प्रसन्न होंगे ।

तुम अपनी मस्ती के भाव से नामस्मरण करती रहना । 'मोटा' को प्रत्यक्ष रूप से तुम यदि देख सको तो ही तुम्हारी भावना और धारणा मेरे में है, ऐसा भरोसा हो सकेगा । बाकी तो वहाँ तक गप्पें ही समझो । इस समय तुम्हें जो कहा है, वह मिथ्या नहीं कहा है । इसलिए कृपाकर हृदय की खूब मस्ती से 'मोटा' में भावना और धारणा दृढ़ करती रहना । तुम्हारे द्वारा तो मुझे रोशन होना या लज्जित होना रहेगा ।

नामस्मरण से प्रेम

स्वजन-बहन : केवल अनुभव से यदि **जीव** जाग जाता होता तो उसकी अपेक्षा रखते ऐसे अनुभव स्वयं के और दूसरों के अनेक अनुभवों को जानने पर भी मन को होनी चाहिए वैसी गहरी असर अभी तक नहीं हुई इसलिए मैं अपने मन से मानती हूँ कि अनुभव हो या न हो पर यदि सच्चे हृदय से भगवान का नाम लिया होगा तो बेकार नहीं जाएगा । आज नहीं तो कल वही उसके नाम में प्रेम जगाएगा ही ।

श्रीमोटा : यह बिलकुल यथार्थ है । तुम्हारी समझ भी ठीक है, किन्तु उसके पहले हमारे जीवन का उद्देश्य, आदर्श और उस कार्य के लिए होनेवाला हमारा आचरण

एवं उन सब का सुमेल हमारे दिन-प्रतिदिन के सकल व्यवहार में कैसा जाग्रत हुआ करता है, उस पर जीवन की गति का मुख्य आधार रहता है ।

मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहं आदि द्वारा पड़ी लीक के अनुसार जो कुछ हमें विचार आएंगे । इसलिए जो जो वृत्ति, विचार, लहर, अन्यथापन पैदा होगा उस बेला में वह हमारा असली स्वरूप नहीं है । इससे उसके साथ संमति या रुचि न लेते हुए, उससे अलग रहा करने का हमें अभ्यास बनाया करना है । जो कुछ हो या बने या पैदा हो, उससे हम स्वयं अलग हैं, ऐसी चेतना अपने में जाग्रत होनी चाहिए ।

तुम्हें **इस** काल में माने हुए 'मोटा' की चेतनाशक्ति में श्रद्धाभक्तिभाव दृढ़कर नामस्मरण प्रेमभाव से मस्ती-आनंद के साथ अनुभव करते रहें ।

तुम दोनों एकभाव से सुमेलतापूर्वक परस्पर प्राणवान बनो और दोनों में एकपन व्याप्त हो तो मेरा तुम्हारे साथ का जुड़ना प्रभुकृपा सार्थक करेगी । तुम्हारे पास मुझे इतनी भिक्षा माँगनी है ।

नामस्मरण करना तो मस्ती से, नदी की बाढ़ जैसे उत्साह से करें । जिससे वह सब अंकुरित हो निकले ।

वासना के आक्रमण

स्वजन : विषयवासना के आक्रमण हों, तब किस

धारणा से आचरण करें ? ऐसी वृत्तियाँ क्यों जागती होंगी ?

श्रीमोटा : अब हमें जीवन में सांसारिक सुख भोगें, ऐसा नहीं होना चाहिए । ऐसी वृत्ति उठे उस समय प्रभु में उनके चरणकमलों में दृढ़ हो जाना चाहिए । वासना यह तो एक से अनेक होने की वृत्ति का साहजिक लक्षण है। वह भी सहज है । **जीव** में वह सहज रूप से होती है। वह व्यक्त हो वह भी प्रभु की ही कृति है और वह प्रभु की लीला-कला है, ऐसा ज्ञानपूर्वक समझकर श्रीप्रभु के अनंत स्वरूप में मन लगाते रहें । उस समय एकाग्र हो भक्तिपूर्वक जो सूझा करे उसमें मन पिरोकर उस प्यारे के साथ तन, मन, प्राण या अहं से खेल खेला करें तो **जीव** में उठी वृत्तियाँ फिर हमें सताती नहीं है ।

प्रत्येक वृत्ति शक्ति का प्रत्यक्ष स्वरूप-लहरीरूप में है । उसका उपयोग जैसे जैसे क्षेत्र में जिस जिस ढंग से हो वैसे वैसे ढंग से उसका फल मिलता है । इसलिए अब हमें तो प्रत्येक वृत्ति, विचार, व्यवहार, संबंध आदि जो जो हुआ करे, उसे प्रभु के स्वरूप की भावना में ही एकाग्र होकर केन्द्रित करते जाएँ तो **जीव**स्वभाव भी बदलता रहेगा ही । जो-जो उठे उससे अलग हैं, ऐसी धारणा, भावना दृढ़तापूर्वक अंतर में रखते हुए एकमात्र श्रीहरि का ही सेवन किया करने में मन लगा देना सहजरूप से हो तो प्यारा साक्षात् है ।

उचित उपयोग

स्वजन : मोटा ! मुझे नौकरी ऐसी आरामवाली मिली है कि मुझे साधना करने में अनुकूलता रहती है ।

श्रीमोटा : साधना करने में अनुकूलता मिले वह श्रीहरि की प्रत्यक्ष कृपा है, ऐसा मानें और अनुभव करें । प्रत्येक **जीव** को वैसी सरलता नहीं मिल पाती । इतनी अच्छी नौकरी वह भी कोई संघर्ष बिना और जिसके विषय में मन को कुछ भी सोचना न पड़े, उसका उद्देश्य हमें सिद्ध होना ही चाहिए । ऐसी रचनावाले प्रसंग में भले ही प्रारब्ध के संयोगों से मिला पर वैसी शान्ति-आराम मिलने का कारण और उद्देश्य तो उसकी भक्ति में हमें सतत रत होना चाहिए और प्राप्त उत्तम अवसरों का उस तरह लाभ उठाएँ तो प्रभु प्रदत्त अवसर का जीव द्वारा उत्तम उपयोग किया गिना जाएगा ।

जैसे माता-पिता अपने बालक को चार पैसे दें और उसका यदि वह उचित श्रेष्ठ उपयोग करता है तो मातापिता खुश होते हैं और यदि खेल ही खेल में वह रकम खो देता है तो मातापिता नाराज़ होते हैं । ऐसा हमारे प्यारे प्रभु का भी है । हमें इस तरह वह परखकर देखते हैं । वह हमारी परीक्षा और कसौटी करता रहता है । उसकी ऐसी परीक्षा, कसौटी में हम मिले हुए अवसर का उद्देश्य समझकर

उसके प्रत्येक क्षण को ज्ञानभक्तियोगभाव से बिताया करें तो समझें जग जीत जाएँगे ।

वृत्तिओं के प्रति सावधानी

स्वजन : निजी बात करता हूँ । जैसे जैसे भगवान का स्मरण करता हूँ वैसे वैसे मेरे मन में विचार रूप में विषय आते हैं और उसके भोग भोगने की योजनाएँ, कल्पनाएँ और युक्तियाँ भी आती हैं । फिर मैं भगवान के मार्ग में मुड़ा हूँ, इससे सभी के विश्वास-श्रद्धा का पात्र बना हूँ । इसलिए विषय–विकार पर मेरा संयम कितना है, यह अन्य को स्पर्श कर देख लेने की योजनायुक्ति भी मैंने एकबार करके देखी पर उसमें मैं भड़का । मेरा प्रश्न यह है कि मेरे मन में ऐसे विचार आएँ, तब मुझे क्या करना चाहिए ?

श्रीमोटा : जब तक हम अपनी वृत्तिओं को नहीं समझते, वृत्तिओं पर संयम नहीं आया और जब तक हमारी वृत्तियों का खेल और लालसा की तीव्र भावना को हम परख नहीं पाते, तब तक ऐसे खेल में पड़ना हमारे लिए जोख़िम से भरा है । विषय-विकार को जीतना, यह कोई सरल नहीं है । पर इससे हमें डरना भी नहीं चाहिए । परन्तु उसके साथ ही साथ उसके साथ हमें ठिठोली भी नहीं करनी चाहिए । उसे साधना रूप समझकर उसकी पवित्र मर्यादाएँ हमें समझ लेनी चाहिए । उन मर्यादाओं का

उल्लंघन हम से कभी नहीं होना चाहिए । हमारे में रही लालसा की वृत्ति बहुत ही सूक्ष्म रूप से हमें प्रेरित न करती हो ? अतः उस विषय की कल्पनाओं का हमें निरीक्षण करना है ? जब तक हमारे चित्त की वृत्ति किसी एक बात में स्थिर नहीं हुई है, जब तक हम अपने विषय (लक्ष्य) में स्थित नहीं हुए हैं, तब तक उस तरह आचरण करने में दूसरे मार्ग पर चले जाने का पूरी तरह सौ प्रतिशत संभावना है । हमें किसी का कुछ देखकर नहीं करना है । हम सभी को इस विषय में खूब सावधान रहना है, नहीं तो हम भगवान के बदले अंदर से लालसा को भजते रहेंगे और ऊपर से भगवान को भज रहे हैं और भगवान के रास्ते में जा रहे हैं, ऐसा मानेंगे । मुझे खुद को तो इस विषय में गंभीर रूप से विचार करना पड़ा है । यहि हमें भगवान की शरण में जाना है तो जिस जिससे हमारी वृत्तिओं का शमन हो वैसा हमें करना है, परन्तु जहाँ जहाँ हमारी वृत्तियाँ उत्तेजित हों ऐसा हमें कुछ नहीं करना चाहिए ।

स्वजन : मोटा ! मेरे ऐसे आचरण के लिए मुझे पश्चाताप होता है । पर मेरे ऐसे आचरण के पीछे कहीं भी बलात्कार नहीं था । सामनेवाले व्यक्ति की भी संमति थी । यह तो संयम कितना हुआ है, उसकी कसौटी करना चाहते थे – इसलिए निकटता बढ़ाई थी ।

श्रीमोटा : हमारा मन तो अच्छे का बहाना करके हमें ऐसी बात में अवश्य डालेगा और 'अच्छा' बताएगा; परन्तु हमें गहराई से सोचते रहना है । हम सब संयमी के बदले स्वच्छंदी न हों जाएँ यह विशेष लक्ष्य में रखना है । ऐसा नहीं होते रहेगा तो हम सभी उस पाप का भार सिर पर न उठा पाएँगे । भगवान को सिर पर रखकर भूलचूक से भी अंदरूनी सूक्ष्म लालसा को यदि पोषण मिला, तो उसके जैसा भयंकर दूसरा कुछ नहीं है । भगवान के नाम बिना या उसकी ओट बिना विषयवृत्ति को संतोष करने के लिए ऐसी वृत्ति भूलचूक से हो या पोषित हुई हो तो वह अच्छा है, पर वह तो आत्मघातक है । हम सभी को निरुत्साहित करने के लिए यह नहीं लिख रहा हूँ, परन्तु यह तो गंभीर बात है । हम इसतरह उसके साथ आचरण करें या इस प्रकार की कल्पनाएँ मन में रखेंगे या उनका सेवन करेंगे तो यह हमारे लिए बिलकुल भी उचित नहीं है । ऐसी बातों में हम यदि जागृति और सावधानी से काम न लें तो हम आगे नहीं बढ़ पाएँगे ।

हम सभी को उन सभी की, साधना फलित हो उस ढंग से ही उपयोग करना है । हमारी वृत्तिओं का स्वरूप इतना सूक्ष्म होता है कि वह हमें अनेक तरह से फँसाता है । मेरे साथ का तुम्हारा अनुभव प्रभुकृपा से ऐसा शुद्ध और वासनारहित करवाया है, इससे तो उल्टा अधिक

सजग रहना है । इस बात की जिम्मेदारी से अब तो प्रभुकृपा से अधिक जाग्रत होना है । इसलिए कृपाकर इस बात में हमें अधिक चौकन्ना रहना है और उसमें ही हमारा कल्याण है । हमें किसी ऐसे व्यक्ति में पूरीतरह आदर की भावना हो, उनके विषय में बहुत पूज्यभाव हो, उनके प्रति खूब ज्ञानभक्ति हो और उसका हमारे प्रति खूब प्रेम हो, तो ऐसे व्यक्ति के साथ हम एक साधना की दृष्टि से आचरण करें तो आपत्ति नहीं है । उसमें तो विकास रहता है । बहन, माताओं के प्रति जब तक संपूर्ण पूज्यभाव और आदर भावना न प्रगट हुई हो, तब तक हमें इस विषय में चेतनाशील रहना है । बहनों के लिए भी वैसा पूज्यभाव और आदरभाव का भाव किसी ऐसे उचित भाई में न हो, तब तक वैसी छूट लेनी भी उचित नहीं है । भले ही वह अमुक हो या अमुक दूसरा कोई भाई हो । उसके साथ हम खेल नहीं खेल सकते । जहाँ तक हम में उस वृत्ति को ऊर्ध्वगामी करने की कला समझ में आयी नहीं है, उसे उपयोग करने में सतत जाग्रत मन नहीं हुआ है, जिस वृत्ति को आचरण में रखने से उस समय दरमियान आत्मभान जाग न पाता हो, हम उस समय पर्याप्त ऊर्ध्वगामी न रहे; मन में, चित्त में या हृदय में भगवान का स्मरण न चल रहा हो, तो वह हमारी लालसा ही थी, ऐसा हमें मान लेना है । इस प्रकार लालसा को छूट देकर फिर

पछतावा करना यह योग्य नहीं है । इससे अच्छा है पहले से ही समझरूपी बाड़ को हमें बाँध लेना चाहिए, यह हमारे लिए जरूरी है ।

जब तक हम में साधना के लिए तीव्र आकांक्षा, प्रकट न हुई हो और फलीभूत करने के लिए मर मिटने की तमन्ना पैदा नहीं हुई हो, और जब तक हमें वृत्तिओं से ऊपर उठ उनके पास से काम लेने की कला नहीं आ पाई; तब तक हम से कुछ भी उलटा-सीधा ना हो । और उपरोक्त कही वैसी दृष्टि, जिज्ञासा और तमन्ना जागी हो और वृत्ति से ऊपर उठ उसे उपयोग करने की कला प्राप्त हुई हो, तब भी साधक उसका उपयोग किस तरह करता होगा उसे तो कौन जाने ? परन्तु उसके पीछे उसका कोई गूढ़ उद्देश्य रहा होगा । हम सभी के दिल में ऐसा कुछ नहीं पैदा हुआ, तब तक हमें तो उस बात में जरूर भड़कते रहना है, परन्तु डरना नहीं है ।

स्वजन : पर, आपको मैं अपनी अत्यन्त विचित्र बात करूँ । मुझे जिस स्त्री के प्रति आदरभाव-पूज्यभाव होता है, उसके प्रति भी मेरे मन में विकार जागे हैं । यद्यपि उसका भोग किया नहीं है, पर मानसिक रूप से ऐसा बना है । ऐसा पूज्यभाव भी अदृश्य हो जाता होगा ? इसलिए साधक पति-पत्नी के बीच विषय का भोग हो तो आपत्ति नहीं है न ?

श्रीमोटा : भाइयों को बहनों के साथ परिचय अपनी भावना की दृष्टि का विकास हो, इसतरह साधना की दृष्टि से विकसित करना है । साधक को इसके अलावा दूसरी दृष्टि और वृत्ति नहीं हो सकती । सतत ऐसा जाग्रत भान यदि साधक नहीं रख पाता, उस साधक में वैसी दृष्टि कभी भी नहीं आ सकेगी । वह तो उस वृत्ति के फंदे में ही फंसनेवाला है । इसलिए हम सभी को योग्य ढंग से रहना है, उसी तरह आचरण करना है, अन्यथा मेरी और तुम्हारी ख़ैर नहीं । हमें भले संसार की न पड़ी हो पर हमें अपनी पड़ी होनी चाहिए न ? इसलिए हमें गहरा विचार करना है ।

जहाँ तक अपनी वृत्ति को किसी निर्मल साधना में एकाग्र नहीं किया है और उसमें पूरे शांत नहीं हुए हैं, वहाँ तक किसी बहन का किसी भाई के प्रति या भाई का किसी बहन के प्रति ऐसा निर्मल भाव रहना या होना संभव नहीं लगता । ख़ैर, जिसके प्रति बहुत ही आदरभाव, खूब पूज्यभाव और अत्यन्त भक्ति की दृष्टि हो, वहाँ ऐसा संभव हो सकता है, परन्तु वहाँ भी हमें तो सतत साधना की दृष्टि से और भावना के विकास के लिए उसे देखते रहना होगा । मनुष्य की वृत्ति को जहाँ तक प्रभु में स्थित होने का और उसमें ही ओतप्रोत रहना समझ न पाएँ और ऐसी लगनी न लगे, तब तक वह अधोगामी रहती होती है ।

इसलिए वैद्य की दवा खाते समय जैसे परहेज का पालन करते हैं, वैसे ही हमें अपने नियम पालने पड़ेंगे... के साथ (पति के साथ) भी ऐसी साधना की दृष्टि रखना और उसे गहरायी में ले जाना और समझपूर्वक एवं जागृति रखकर उसका सहवास करोगे तो... को और तुम दोनों को लाभ मिलेगा । हम सब यदि इस बात को योग्य ढंग से न समझें तो हम कहीं अटक जाएँगे और भगवान का काम भगवान के ठिकाने रहेगा । हम सभी ने खेल शुरू किया है भगवान के साथ और भगवान में अपने जीवन को समाना है । इसलिए इसतरह हमें सकल कार्य करने चाहिए । प्रत्येक कार्य करते समय भगवान की दृष्टि रहे और हमारी भावना के विकास की दृष्टि रहे, उसे हमारी समझ में लाना ही होगा ।

हम सभी में इस विषय में अधिक ख़याल और आचरण नहीं आया है । हम सभी यदि असावधान रहेंगे तो हम सर्वनाश मोल लेंगे । मेरा तो जो होना होगा वह होगा । मैं तो अकेला बेघरबारका हूँ, इसलिए कहीं भी भटककर भीख माँगकर खा लूँगा; परन्तु हमारे दूसरे सभी स्वजनों के आगे हमें, जिन्होंने भगवान के होने की इच्छा की है, वे उन्नत मुख से कैसे देख सकेंगे ? इसलिए हमारे जीवन में साधना की मूल दृष्टि अधिक रहा करे, प्रत्येक कर्तव्य और प्रत्येक बात में उस पर हमें बहुत सजीव

झुकाव देना चाहिए । मुझे इसकी गंभीरता का जितना गहरा ख़्याल आया है, उतना गहरा ख़्याल भगवान हम सभी को कराए, ऐसी उससे प्रार्थना है । हमारी समझने की शक्ति और समझ अधिक उत्कृष्ट भावनावाली हो और प्रत्येक वृत्ति के मूल देखना सीखें और उस विषय में सोचें तो उससे हमें बहुत फ़ायदा होता रहेगा । ऐसा पृथक्करण करने की आदत हमें अयोग्य होते और करते हुए; जरूर रोकेगी और हमारी यह आदत हमें भगवान की गरज़ पूरी करेंगी । जहाँ तहाँ हमें टोका करेंगी और भूलों से हमें बचाएगी । हम सभी को एक होना है, यह सच है, परन्तु पहले हम विचार में एक हों । फिर बुद्धि में एक हों, उसके बाद समझ में एक हों । हम एकदूसरे के प्रति खूब-खूब आदरभाव रखें, ऐसा होने पर भी हम एक दूसरे के प्रेमवाले चौकीदार बनें, क्योंकि दूसरों के दोष नहीं देखने हैं, परन्तु हम जितने साथ हैं, उनमें सही रूप में जो टेढ़ापन है; ऐसी समझ और भावना रखकर उसे बताते रहना चाहिए । हम समाज में एक हों । इसके पश्चात् यानी इन सभी में एक होने के बाद हम हृदय से एक हो सकेंगे । जहाँ तक हम किसी में भी एकता नहीं, वहाँ तक हम में अनेक बातों में अंतर पड़ता है, वहाँ तक हम दूसरे खेल में नहीं पड़ सकते, पड़ेंगे तो चोट आये बिना नहीं रहेगी, इस विषय में मुझे कोई शंका नहीं है ।

स्वजन : मोटा ! विषयभोग में मात्र स्पर्श का ही सुख होता है, यह तो सभी का अनुभव है । इसलिए ऐसी वृत्ति को परमात्मा के भाव में रूपान्तरित करने के लिए कोई उपाय है सही ? आप प्रत्येक सच्चाई का ज्ञानात्मक स्वीकार करने को कहते हो तो स्पर्शसुख की वृत्ति आत्मज्ञान के अनुभव के लिए किस तरह उपयोगी हो सकती है ?

श्रीमोटा : विषयवृत्ति को रूपान्तरित करने के लिए जो साधना हमें करनी है, यदि उसे हृदय की भावना से करनी होगी तो स्पर्श की पवित्रता हमें पूरी तरह समझ लेनी चाहिए । उसके बिना के सभी आरंभ बिना एक के शून्य जैसे हैं । किसी के स्पर्श या संपर्क बिना हमें ज्ञान पैदा नहीं होता । उदाहरण–आँख की इन्द्रिय । जिस वस्तु का ज्ञान हमें प्राप्त करना है, उस वस्तु के संपर्क में वह आती है । उन दोनों की संधि होती है और इतना होने पर भी आँख के अंदर के ज्ञानतंतुओं की संधि यदि दिमाग़ के उस केन्द्र में न हुआ हो तो हमें ज्ञान नहीं होता । इसलिए मुख्य आधार तो दिमाग़ की इन इन्द्रियों के केन्द्र के साथ योग्य संधि पर ही निर्भर करता है । हम जब किसी में खूब डूब जाते हैं, तब हमारे आगे से कोई निकल जाय तो भी हम उसे जान नहीं पाते, वह इसका सबूत है । फिर दिमाग़ के उन केन्द्रों में उन इन्द्रियों के

ज्ञानतंतुओं की संधि होते ही हमारे उस केन्द्र के पहले के अनुभव अनुसार उसका भी ज्ञान हमें स्फुरित होता है ।

ऐसे केन्द्रों के जो अनुभव हमें अभी तक हो चुके हैं, उनसे विपरीत प्रकार के अनुभवों में यदि उन केन्द्रों की समझ हमें बदलनी हो तो उन्हें आघात देने ही होंगे । ऐसे आघात दें वह उसके लिए केन्द्रों के साथ ही इन्द्रियों के ज्ञानतंतुओं के संपर्को के फलस्वरुप जो वृत्ति उठे या स्फुरित हो उसमें हम न लग जाँय । उसके सामने संघर्ष करें और उसमे से पैदा हुए इसके जोश से अधिक तटस्थता विकसित करके अपना काम किया करें तो हम उन केन्द्रों को अवश्य ऊर्ध्वगामी कर सकेंगे । अखण्डता संभालने के लिए हमें उसमें भी लगातार लगे रहना चाहिए । फिर जब उसमें पवित्रता की भावना गहरी पैठ जाती है, तभी हमें अपनी वृत्तिओं के पुराने अनुभवों के अनुसार संपर्क के सामने टिक सकने का बल और प्रेरणा मिला करती है । पवित्रता की भावना हमारे दृष्टिबिन्दु को सतत ऊर्ध्वगामी बनाए रखती है । हमारे अंदर जो भी भावना उठे, उसका उपयोग कर लें, वैसे स्पर्श का उपयोग भी साधना की तरह ही सतत करते रहना है । कुछ भी सर्जन करने के लिए दो आमने सामने के प्रवाह (उदाहरणार्थ–बिजली के बल के लिए पोजिटिव और नेगेटिव प्रवाह) की आवश्यकता है, इतना ही नहीं, किन्तु उनके संपर्क की भी आवश्यकता

है, उसी तरह हमारी बात में भी है । पोजिटिव यानी अच्छा और नेगेटिव यानी खराब ऐसा कुछ नहीं है । हम सभी में ये दोनों गुण विद्यमान है । परसों मुझे एक व्यक्ति ने कहा कि पुरुष में स्त्री की इन्द्रिय बहुत सूक्ष्म स्वरूप में रही है और स्त्री में पुरुष की भी और यह विज्ञान से सिद्ध हुआ है ।

किन्तु जैसे हमारी तरंगों की शक्ति अलग-अलग प्रवृत्तिओं में बहकर छिन्न-भिन्न हो जाती हों, तो इससे कोई परिणाम नहीं लाया जा सकता । वैसे ही हमें इस स्पर्श की शक्ति को भी केन्द्रित करना चाहिए, यह भी काफ़ी नहीं, इसके पीछे का उद्देश्य एवं समझ दृढ़तापूर्वक जागृति से रख सकें इतना ही नहीं, पर वह समझ उत्कट भावमय रहा करे, तो ऐसी एक में ही केन्द्रित हुई स्पर्श की भावना हमें फलित हुए बिना नहीं रहेगी जानें, उसे शस्त्र की धार की तरह जितनी अधिक तेजस्वी उतना ही उसकी कार्यक्षमता अधिक से अधिक निश्चित होती जाती है । परंतु केवल तेज़ धार ही शस्त्र की कार्यक्षमता के लिए पर्याप्त है ऐसा नहीं । शस्त्र के उपयोग करनेवाले पर भी उसका अधिक आधार रहता है । यदि वह योग्य कुशलता से, सावधानी से, लक्षवेधने और योग्य प्रमाण में बल के कुशल उपयोग से वह उपयोग करे तभी वह शस्त्र कार्यसाधक बनता है । वैसा ही हमारी साधना में भी है । यह साधना

बहुत सूक्ष्म है सही, पर उसका परिणाम भी वैसा ही सूक्ष्म है, वह तुम्हें समझ में आया होगा, ऐसी आशा रखता हूँ ।

स्वजन : मोटा, आपने जो स्पर्श द्वारा ज्ञानतंतुओं के संस्कार के उदय की और समझ की बात कही, इससे बहुत खुश हुआ । पर हमें जो अनुभव हुए होते हैं, उन्हें ही हमारा मन समर्थन देता है । हम वस्तु के मूल में क्यों नहीं जा पाते ? हम में रहा भगवान हमें क्यों जाग्रत नहीं करता ? मन के अभिगम में ही क्यों चिपके रहते हैं ?

श्रीमोटा : हमें यदि अपने पर होनेवाले आघातों और प्रत्याघातों के परिणाम से चलना रोक देना हो तो हमें तटस्थता की वृत्ति को विकसित किये बिना नहीं चलेगा। आघात-प्रत्याघात के परिणाम से ही वृत्तियाँ हमें विचारों की परम्परा में रगड़ देती हैं और उससे अलग ढंग से अलग होकर, कहीं कुछ देखने की दृष्टि हम में नहीं आ सकती । हम एक या दूसरी ओर के रुख़ के होते हैं । किसी भी प्रकार के रुख़ बिना के - पक्ष या झुकाव बिना के रहने का प्रयत्न करना है । फिर हमें जो कुछ समझ आता है, वह सब परिस्थिति के संपर्क के कारण और उसके कारण हमारे अंदर के उस केन्द्र के हुए आगे-पीछे के अनुभवों की परम्परा के आधार पर वे हमें निर्णय पर लाते हैं । इससे वस्तु के मूल में जाने का हमें मौका नहीं

मिलता, इसलिए तटस्थता की बहुत आवश्यकता है ।

हमें अनुभवों की परम्परा की हमारी समझ या रुख़ से हमें यदि चलना न हो, तो भी तटस्थता की वृत्ति विकसित करनी होगी । हम अपने मन की वृत्तिओं से चिपके चले जाते हैं । जिससे हमारे में **जीव** रूप में रहे **शिव** को हमें रास्ता दिखाने का मौका कभी भी नहीं मिल पाता । वह तो सुषुप्त रूप से जैसा का तैसा पड़ा रहता है । हम अपने मत के रुख़ से जितना अधिक लिपटते हैं, उतना अधिक हमारा **जीवपना** अधिक उत्कट बनता जाता है । इसलिए हम जैसे जैसे तटस्थता विकसित करते जाएँगे वैसे वैसे हमारे **जीव** में जीव-प्राण आने लगेगा । उसके ओर की हमारी दृष्टि खिलने लगेगी । मन के सिवा किसी अन्य तरफ़ हम आधार माँगते हैं, ऐसे अपने आधार में जब दृढ़ता आएगी, तब मन ऊपर आये बिना नहीं रहेगा । तटस्थता की मात्रा भी बढ़ती जाएगी । इसतरह तटस्थ रहा करें तो ही हम वृत्ति के साथ मिलने से रुक सकेंगे ।

स्वजन : मोटा, पर जो संस्कार जागते हैं, वे तो मानो सच ही हों ऐसे भासित होते हैं । उस अनुसार आचरण करने के बाद कभी ऐसा समझ में आता है कि यह ठीक नहीं हुआ । बहुत बार नयी समझ देता है । यह समझ हमारी परम्परावाले संस्कारों से कुछ अलग होती है

पर बुद्धिबल उस समझ को स्वीकार नहीं करता तो उस समय बुद्धि को किस तरह मोड़ें ?

श्रीमोटा : हम में जो भी संस्कार पड़ते हैं, संस्मरण जागते हैं और जो हमें हमारी समझ के विषय में मार्गदर्शन देते हैं, वे भी हम पर कोई संपूर्णरूप से सत्य पर आधारित नहीं पड़े होते । उनकी भूमिका शुद्ध-निरपेक्ष सत्य की नहीं पर अलग प्रकार की होती है और उसके आधार पर हमारा व्यवहार चलता रहता है । इसलिए हमें उस घेरे से भी अलग होने का सावधानीपूर्वक का प्रयत्न करते रहना है । हमारी समझ भी बदलती जाती है । यह प्रत्येक के जीवन का अनुभव है । अमुक समय की ऐसी समझ के आधार पर हमने जो कुछ किया होगा, उसमें हमारी संपूर्ण प्रामाणिकता हो, तो भी नयी समझ के आधार पर आते हुए यदि पीछे किये निर्णयों या कार्यों या हक़ीक़त हमारे रचनात्मक विकास, को रूँधनेवाले लगे अथवा तो तब का भान सचमुच अभान था या एक प्रकार का, एक ही तरफ झुकाव का था, ऐसा समझें तो भी उस पर लिपटें ही रहें, ऐसा कुछ नहीं है । ऐसा समझने पर भी हमारे तर्क, दलील, बुद्धि आदि का हमारी नयी समझ और उसके अनुसार किया गया आचरण अयोग्य लगा करे तो भी उन सब को (तर्क आदि को) हमें आदर नहीं देना है ।

हम जो कुछ नया करते हैं, उसमें हमारे दिल में दूसरे किसी प्रकार का आधारभूत मार्गदर्शन नहीं है । पर, हमें सुझी या जागी समझ के आधार पर चलने का निश्चय है, ऐसा भरोसा हो तो फिर उस बात में बुद्धि को मचक न दो तो कोई बात नहीं । मानो कि एक बार मैंने शराब पी और उसके नशे में तुम्हें दस हजार रुपए देने का वचन दिया । अब जाग्रत होने पर यदि उस वचन के अनुसार चलने का रखूँ तो उस बेहोशी अवस्था की समझ के वश होकर चलना हुआ । सामनेवाला व्यक्ति हमें शायद झूठा या अप्रमाणिक गिने तो गिनने दें पर—ऐसा कुछ मन में न लाकर—हमें अपनी जागी हुई समझ के आधार पर चलना उचित है । इसमें कोई ग़लती नहीं । इतना ही नहीं वही योग्य है । इसमें हमारा इरादा वचन में से दूर जाने का नहीं है, परन्तु पहले की हमारी बेहोशी जैसी समझ में जो हुआ, उसे उल्टा सुधार लेने की दृष्टि है । बेशक, मेरे पास उस व्यक्ति की नैतिक माँग हो तो बात अलग है, पर हमारे तब के झुकाव का एकतरफी अभिगम के कारण जो हुआ हो, उसे सुधारने का हमें हक़ है । बैलगाड़ी के पहिये बनाते बनाते उसका एक पहिया यदि टेढ़ा हो गया हो तो जब बैलगाड़ी चलने लगेगी और उसके चलने में पहिये के टेढ़ेपन के कारण कोई तक़लीफ़ लगे तो उसे ठीक करना चाहिए और कोई अड़चन नहीं रहनी चाहिए ।

स्वजन : मोटा, अधिक स्पष्टता पाने के लिए शायद मेरे प्रश्न में पुनरावर्तन होता हो तो क्षमा करना । विषयवासना को संयम में रखना चाहिए, ऐसा मैं समझता हूँ । यह ठीक है ? विषयवृत्ति का उपभोग बंद करने से वह धीरे-धीरे काबू में आ जाएगी, सही है न ?

श्रीमोटा : हमें प्राप्त इन्द्रियों और उसके पीछे की प्रवृत्ति की रचना से हम में जो छाप उठती रहती है और उस छाप में से जो रुख़ जागे उसके साथ हम मिल न जाएँ, पर अलग रहकर सोच लेने की आदत हमें डालनी पड़ेगी । फिर उन उन इन्द्रियों को उनकी रीति से हमें उपयोग नहीं करना चाहिए । उदाहरण के तौर पर विषय की वासना, यह एक प्रकार के सर्जन की प्रेरणा के लिए मूलरूप से तो है । उसे इसतरह संयम में हम नहीं रख सकते । उस वृत्ति का उपयोग न करने से उसे हम काबू में रख सकते हैं या ला सकते हैं, यह भी उचित ख़्याल नहीं है , क्योंकि उसके स्वभावानुसार वह तो अपना काम सूक्ष्मभाव से हम में करती रहेगी और असर डालती रहेगी । इसलिए इससे अच्छा तो वह जो प्रेरणा हमारे अंदर है, उसका हमें अवश्य उपयोग करते रहना है । पर वह उसकी रीति से नहीं, पर साधना की रीति से उसका अभ्यास दृढ़ होते रहने से उसका स्वभाव सर्जन का है, वह सर्जन दूसरी रीति से अवश्य होने लगेगा । इस तरह से उपयोग होने

से उसमें जो एक प्रकार का बल है, वह बल भी हमें मिला करेगा । इस प्रकार जो कुछ हमें मिला है, उस सब का हमें रचनात्मक ढंग से उपयोग करते रहना सीखना है; पर उसकी वृत्ति (स्वभाव) अनुसार उसका उपभोग न हो जाय, इसके लिए श्रीभगवान के प्रिय नाम के साथ उसकी कृपा से जागृति और पुरुषार्थ उसमें बनाए रख़ना है । हमारी वासना की वृत्ति पड़ी रहने देने से मर जानेवाली है, ऐसा कभी नहीं मान लेना है । हमें उसका उपयोग कर उसके रुख़ को बदलते रहना है ।

स्वजन : जो पुरुष जीवन को दिव्य बनाना चाहता हो, वह अपनी पत्नी को किस तरह साथ रख सके ? पत्नी पति के लिए सब कुछ त्यागने के लिए तैयार हो तो उसे साथ रख सकते हैं ?

श्रीमोटा : हम युवक सुधार के जोश में अपनी पत्नी को साथ नहीं रखते, उसे उसमें रुचि पैदा करने के लिए प्रयत्न नहीं करते । फलतः अंत में तो वह भाररुप ही लगने लगती है । ऐसा होने से उनके जीवन में एकरूपता नहीं रहती । कई साधक ऐसा ही करते हैं, पर उन लोगों को न्याय देने के ख़ातिर इतना तो क़बूल करना होगा कि वे प्रयत्न करते होंगे, पर सफल नहीं हो पाते और छोड़ देते होंगे । हम कब सफल होंगे, वह हम जान नहीं सकते और जहाँ हमें निराशा की चरमसीमा लगती हो,

वहीं शायद एक कदम आगे जाने पर ही आशा का अंकुर फूटता है; परंतु ऐसी क्षण आने से पहले ही हम टूट जाँए ऐसा होना संभव है और कभी ऐसा होता है भी सही । इसलिए हमें ऐसा नहीं करना है । हमें मन में आशा या निराशा ऐसा कुछ भी तौलना नहीं है । जहाँ तक भगवान हमें संपूर्ण यंत्र के रूप में स्वीकार न करें, वहाँ तक हमें तो उन्हीं में रमा करना है । उस मार्ग में हम जिस परिस्थिति में अपने आप आते जाएँ उस परिस्थिति को स्वीकार करते जाएँ और अपना धर्मपालन करते करते तथा उसे छोड़ते छोड़ते—उन दोनों दशाओं में—उसे ही समर्पण करते जाएँ । नम्र रहा करें, किसी की पकड़ में न रहें या न जकड़ें रहें (विचार की भी पकड़ होती है), उसे ही सब कुछ कहा करें, उसकी कृपा माँगा करें, सभी अवस्थाओं में हो सके उतना स्वस्थ होकर आचरण करें, कहीं किसी के बंधन में न पड़ें, उसकी शरण में रहते हुए (तेरी इच्छा पूर्ण हो) ऐसा मान लेकर और अपने आग्रह, ममत्व, मत, अंदाज़ छोड़ते रहें । इसलिए हम तो पत्नी को साथ लेनेवाले हैं ।

पर इस बात में उन्हें अपनी इंतज़ारी बढ़ानी होगी । यदि उन्हें इस मार्ग में आने और रहने की इच्छा की होगी तो उन्हें अभी बहुत कुछ छोड़ना है । इस विषय में उन्हें बहुत बहुत सोच लेने की आवश्यकता है । हमें अंधेरे में

कूदना है यह बात सही है, पर समझकर ऐसा करना है । जो कुछ करें सोच समझ कर करें, जिससे पीछे से पछताना न पड़े ।

उन्हें कपड़े, गहने, पैसे, बच्चे, अच्छे दीखने का मोह – ऐसे अनेक प्रकार के मोह छोड़ने ही पड़ेंगे । यदि ऐसा करने से जीव उबे, बैचेनी हो, दुविधा हो, लाचारी हो, पति के पीछे चलने की वृत्ति से ऐसा करना हो तो जीवन में आनंद नहीं रहेगा । जलन रहा करेगी । फिर यदि साधना के उद्देश्य से नहीं पर पति के ख़ातिर त्याग की भावना से बनेगा तो सच्चे त्याग से तो आनंद ही जन्मता है, इस लिए हृदय की प्रेरणा से हुआ, वह त्याग आनंद तो पैदा करता है पर साधना के प्रदेश में इससे प्रवेश नहीं कर सकते । हम अपने आपको छल नहीं सकते । शायद हम दूसरों को छल सकते हैं । किन्तु बहुत बार मनुष्य अपने आप को भी छलता है । ऐसे भार को लेकर कोई भी मनुष्य बहुत कदम नहीं चल सकता । उसका भार ही उसे तोड़ डालेगा ।

स्वजन-बहन : पत्नी अपने पति की इच्छा के लिए करे तो उचित नहीं है ? **मोटा !** हमारा अधिकतर समय घरकाम में ही चला जाता है । वहाँ फिर सोचने-चिंतन करने का समय ही कहाँ मिलता है ? यों तो आप बहनों का बहुत सारा पक्ष लेते हो, फिर भी हमें तो मुँह पर

डाँटते हो । हम में मोह है, ऐसा ही कहा करते हो । क्या पहले की अपेक्षा मुझ में थोड़ी सी समझ बढ़ी हो ऐसा नहीं लगता ?

श्रीमोटा : योग्य समय में क्या-क्या होना चाहिए वह और घर में जो-जो हो उन प्रत्येक की वृत्ति को समझें और उसे क्या-क्या, कैसा चाहिए, वह भी हमें पहले से जान लेना चाहिए । क्योंकि हमारे व्यवहार का यह मुख्य कर्तव्य है । इन सभी कामों में यदि हमने एकतानता न बतलाई या न ला सकते हों तो योग में ला सकते ही नहीं । हम तो उन कार्यों को करते रहेंगे । फिर उन कार्यों में हम अपना अहम् तो रखते होंगे ही नहीं । इतना ही नहीं पर भगवत्प्रीत्यर्थ कर रहे हैं, ऐसी भावना विकसित करने के लिए प्रयत्न करते होंगे और वह सब 'तुम्हारी मरज़ी हो ऐसा बना करे' ऐसे प्रार्थनाभाव के साथ ही करते होने से उसमें हमारी इच्छा का महत्त्व– प्राधान्य न रहा हो और वह सब फिर उसे ही समर्पण हुआ करता हो तो कर्म साधना का अवरोधरूप नहीं होता । मुख्य प्रश्न तो हमने हमारी इच्छा ऐसी बलवान की है या नहीं ? हमारी दृष्टि, वृत्ति और अभिगम उस ओर गया है कि नहीं ? यही है शेष कठिन कुछ नहीं है । हमारे साथ जो संगाथी जो हो वे भले ही ढीले हो, किंतु हृदय की सच्ची जिज्ञासा, तमन्नावाले हो, ऐसे हमें चाहिए । तुम में ऐसा कुछ नहीं

है कि जिससे हम ऐसे न हो सके ?

हम से अधिक त्याग की शक्ति, श्रद्धा, विश्वास तुम्हारे में है । मात्र हमसे तुम्हारे में मोह अधिक होता है । एक को जकड़े रहने की वृत्ति भी होती है, पर वह छूटने भी लगी है और समझ भी बढ़ती ही जा रही है, तो फिर दृढ़ निश्चय क्यों नहीं करती हो ?

संयम या संततिनियमन

स्वजन : आज के जमाने में संततिनियमन अनिवार्य है तो जीवन के विकास के उद्देश्य की भावना ऐसे नियमन द्वारा किस तरह बनाए रखें विकसित कर सकें - उसे समझाइए न !

श्रीमोटा : वर्तमान-समय में जीवनव्यवहार का संघर्ष बढ़ा है । कठिनाइयाँ बढ़ी हैं और जीवन का स्तर भी ऊँचा उठता जा रहा है और इससे धन की भी पहले से अधिक आवश्यकता पड़ती है । अतः मनुष्य को सोच-समझकर बालकों की संख्या जितनी कम हो उतनी रखें । बालक को अधिक से अधिक सुविधा मिले और कम से कम बालक हों तो उन्हें उत्तम नागरिक के रूप में योग्य शिक्षा दे सकने की संभावना रहेगी । फिर संयम से संयम विशेष बनता है और भोग से भोगेच्छा । भोग की तृष्णा, भोग की लोलुपता अधिक से अधिक तेज़ी से बढ़ती है, ऐसे उसका अंत तो आ नहीं सकता । भोगते-भोगते भोग

करने की तृष्णा लोलुपता कम तो होती ही नहीं बल्कि बढ़ती है । इससे संसार-व्यवहार और जीवन-व्यवहार चलाने की दृष्टि से भी विशेष बालक न हों, यह हितावह है । यह हुई स्थूल की यथार्थता ।

जीवनभावना की दृष्टि से सोचें तो पति-पत्नी के जीव का सामंजस्य, साम्य, सुमेल, दोनों के बीच की दिल की सहानुभूति, सद्भाव और परस्पर के दिल का भाव तो दोनों भोग की इच्छा की तृष्णा से मुक्त होने पर वैसे विकसित हुए संयम की भावना में से वैसे गुण प्रकट होते अनुभव होते हैं । दिल के परस्पर के भाव को तभी सही रूप से हम परख सकते हैं और सच्चा सख्यभाव तो संयम की स्थिति आते ही प्रगट होता है । संयम के बिना मानसिक बल, विवेकशक्ति, संतुलन, शांति आदि कुछ भी उचित रुप में प्रगट नहीं हो सकता । संपूर्ण संयम तो प्रभु में लगनी लगे बिना संभव होता नहीं है, वैसी लगनी न हो तो भी मनुष्य की जब सत्त्वगुण में निष्ठा हो, तभी चेतनात्मक एकसा संयम आ सकता है । यह हुई उसके विज्ञानशास्त्र की बात ।

स्वजन-बहन : मोटा, मेरे पति मुझे एक समय आपके विषय में समझाते हुए कहते थे कि **मोटा** के हृदय में परमात्मा प्रगट हैं । हम सभी उन्हें निमित्तमात्र से मिले हैं । हमारे में रहे अप्रगट परमात्मा को जाग्रत करने में वे

समर्थ हैं । पर हमें ऐसी जाग्रति के लिए इच्छा-संकल्प-निश्चय-शक्ति पैदा करनी चाहिए । फिर वे ऐसा भी कहते थे कि परमात्मा की गूढ़ शक्ति के द्वारा आपश्री हमारी वृत्तिओं के मूल तक पहुँचकर हमारी वृत्तिओं को रूपान्तरित करने में समर्थ होते हैं । मुझे ऐसी सूक्ष्म बात कम समझ में आती है । किन्तु आपके संबंध के बाद आपके स्मरण से मुझे जीवन में अनेक परिवर्तन तो अनुभव हुए हैं ही । यह सब कैसे होता होगा ?

श्रीमोटा : भगवान (सभी की) वृत्ति के साथ वृत्ति रखवाता है, इसलिए वृत्ति के दौर की समझ आ जाती है । उसे कहाँ आघात देना है, वह भी पता लगता है । इसलिए ऐसे समय कितनी ही बार मुझे समझने में और मन की समझ के आधार पर परखने और माप निकालने में भूल हो जाती है । पर ये सब जोख़िम मुझे उठाने ही चाहिए । गैरसमझ हो या सिर पर आरोप आये या किसी भी तरह का दूसरा लगे तो भी जोख़िम उठाना ही पड़ेगा । मेरे लिए तो इसकी कोई बिसात नहीं । यह तो मात्र इनमें रहा यथार्थ भय है । पर उस वृत्ति के साथ वृत्ति रखने के कारण उसके दिल में उसकी जीव प्रकार की वृत्ति के कारण उसे यदि प्रत्याघात हो और यदि उसकी स्थिरता न रह सके, तब उल्टा वह वृत्ति गहरी जाने की संभावना रहती है, यह वास्तविकता भारी है । प्रभु ने अभी तक मुझे ठगा नहीं

है । उससे ठगे जाने का भी क्या है ? पर इसमें एक बात स्पष्ट है कि उस तरह के भाव तुम्हें विकसित करने हैं ।

मुझ में और भाई में बहुत अंतर है । वह तो महिलाओं का पक्ष खींचनेवाला हैं । मेरा कोई पक्ष नहीं है । मुझे जो समझ सकता है, वह इस सत्य को जान सकता है । मेरा आचरण भी कठोर है । मेरी भाषा भी सख़्त होती है । जीवन में कठिनाई अधिक पड़ी है । इससे कहा या दूसरे कारणों से उन कठिनाइयों की छाप अब तक रही हो ऐसा लगता होगा । यद्यपि भाई की और मेरी दृष्टि एक नहीं है । मुझे तो डॉक्टर का काम करना होता है । कहीं पर फोड़ा देखकर काटना भी पड़ता हैं । उसमें यदि हम संकोच करेंगे और वह काम उमंग एवं आनंद से न स्वीकार करेंगे तो, उस काम का फल यथायोग्य नहीं आ पाता । भाई कोई डॉक्टर नहीं है । इसलिए भाई जैसा आचरण मुझसे नहीं होगा । मुझसे कभी धप्पे तो कभी गुस्सा तो कभी कठोर वचन ऐसा मिलेगा । और तुम्हें जो कुछ पसंद न हो, वह सब विशेष रूप से करना पड़ेगा ।

पति के साथ प्रेम

स्वजन : मेरे पति मुझे बहुत ही अनुकूल हैं, इसका मुझे संतोष है ।

श्रीमोटा : तुम्हें जो पति मिले हैं, वह तेरा और मेरा सद्‌भाग्य है । अनेक जन्मों के पुण्य से वह हमारा पति

बना है । उसके सद्‌गुण तो अपार हैं । उसकी सहानुभूति और प्रेम हम पर होता ही है । पर हम अभी तक उसमें सर्वभाव और एक राग से भरपूर लीन नहीं हुए है । वह हमारा दिलदार हम उसके दिलबर, पर हृदयोहृदय अभी एक गान, एक तान, एक भाव से नाच नहीं पाते । अभी हम ऐसे कहाँ अभेद हुए हैं । ऐसा हमें होना पड़ेगा । उसमें भी ऐसा ही प्रभुभाव हमें हृदय से भक्तिभाव से सजग करना होगा । वह करे, न करे यह प्रश्न हमारा नहीं है । ऐसी इच्छा करें तो ही वह सौदा होगा । हम तो अपना धर्म पालें तो अधिकार तो मिलेगा ही । धर्म के हृदयपूर्वक, सद्‌भाव भरे आचरण से ही जीवन बनता है ।

तुम से मुझे बहुत आशा, उम्मीद और चेतना है । तुम चाहो तो हमें अवश्य उज्ज्वल कर सकती हो । पर उसके लिए तुम्हें प्रचण्ड पुरुषार्थ और शरणागति का भाव विकसित करना होगा । तुम्हारा जो कुछ योग्य होगा, वह हम मानने को तैयार ही होंगे । पर उसके पीछे यह मनाने के लिए उस जीव की मन की वृत्ति अलोप हो जानी चाहिए । मानो तब भी ठीक और न मानो तब भी ठीक । ऐसी अनाग्रही वृत्ति हमें विकसित करनी है ।

अनुष्ठान पहले की तैयारी में भगवान की भक्ति में मन को निरन्तर खूब विकसित किया करना है और भजन, भक्तिभाव जीवंत बढ़ें उतना करना है ।

वह फोटो तुम लोगों ने किस ढंग से रखी है ? यदि रखना हो तो उसे उत्तम ढंग से रखो । मैंने तो अपने गुरु का फोटो नहीं रखा था । हृदय में ही उन्हें रखना उत्तम है । पर बाहर स्थूल रूप में रखना हो तो उसे अच्छे ढंग से रखना चाहिए । उसका काँच भी कैसा टूटा-फूटा है । तुम्हारा अभिगम उस जीव के प्रति कैसा है, यह तो इतने से जान सके, वैसा है । जीव किसे कितना महत्त्व देता है, वह उसके आचरण-तौर तरीक़े से ही पता चल जाता है ।

भगवान में चैतन्यभाव प्रेरित हो; उस भावना और धारणा से प्रत्येक कर्म-संबंध-व्यवहार रखा करें और उसका नाम खूब प्रेमभाव से लिया करें ।

जहाँ-तहाँ एकमात्र भगवान पर हम हृदय से आधार रखते हो जाएँ और संसार में मिले हैं, वह उसे ही प्राप्त करने के कारण मिले हैं । इससे उनमें ऐसी ही भावना रखकर व्यवहार करें यही प्रार्थना है ।

सुमेल साधना

स्वजन : मेरी पत्नी के मन में हमेशा मेरे लिए अन्यथाभाव रहा करता है । जबकि मुझ से भी दूसरों के प्रति अन्यथाभाव होता है सही ।

श्रीमोटा : कितनी ही बार तो हम अपने न आने की वजह से और आलस तथा प्रमाद के कारण दूसरे

जीवों के मन में अन्यथापन लाते होते हैं । अपने विषय में जो बताने योग्य हो, वह सब उन्हें बताते रहें तो वह सुमेल और सद्‌भाव लाने में मददरूप हो सकता है ।

'हरि स्मरण में लीन वही जीवन' इतना प्रभुकृपा से मन में बैठ जाय तो आनंद ही आनंद । **हरिस्मरण में लीन हो सके, तब से ही सच्चे जीवन की शुरुआत होती है । यह हक़ीक़त तो बिलकुल सच है ।** परन्तु यह तो वैसा अभ्यास करते करते ही आ सकेगा । तुम दोनों मिलकर हरिस्मरण का सचमुच यज्ञ करो तो बहुत उत्तम हो ।

हरिस्मरण बिना हमारे लिए दूसरा कोई सरल साधन नहीं । दूसरा, यह बात तुम्हारें गले में उतर गयी है, वह अच्छी बात है । इसलिए कृपाकर प्रयत्न करते रहें । तुम दोनों परस्पर एक दूसरे की सहनशीलता से, प्रेम से सहन करते हुए एक दूसरे के गुण को देखकर, सोचकर एक दूसरे में रमा करो - भावना से वही उत्तम यज्ञ है ।

मुक्तात्मा का स्पर्श

स्वजन : मोटा ! अनेक बार आप कहते हैं, इसकी असर तो मुझे बहुत नहीं होती, पर तुम्हारे साथ का थोड़ा बहुत संबंध ही अद्‌भुत काम करता है ।

श्रीमोटा : भाई ! इसमें मेरा कुछ नहीं । यह शरीर-देह तो नाचीज़ से नाचीज़ है । यों मानो तो इसका बहुत महत्त्व और मूल्य है और न मानो तो दो कौड़ी का भी

नहीं और मन-बुद्धि-चित्त-प्राण-अहम् का संबंध तो हृदय के साथ है । यदि संबंध को स्वीकार करें तो सजीव रहता है, नहीं तो ऐसा का ऐसा पड़े रहता है और कई बार किसीमें विरोध भी काम करता है ।

प्रभुकृपा यदि मानें तो और स्वीकार करें तो तुम दोनों को मैं मेरा अपना स्वजन मानता हूँ । जिसमें इच्छा रखते हो, उसमें काम आने को भी तैयार हूँ । जब वैसा लगे, तब तुम मुझे अवश्य बिलकुल संकोच बिना खुली रीति से कहना, '**मोटा !** आप इतना-इतना और इस तरह करो ।' ऐसा कहने पर अवश्य मुझ से जो हो सकेगा, उतना सब करने प्रभुकृपा से तत्परतावाला **जीव** हूँ । और वह तुम्हारे ख़ातिर करता हूँ वैसी भावना भी मन में नहीं होती । मैं भी प्रभुकृपा से तुम्हारे जैसा ही हूँ । मात्र इतनी ही तुम से प्रार्थना है कि यदि गिन सको और यदि दिल हो तो मुझे अपना समझें ।

संबंध और प्रेम का आधार मुख्य तो हृदय की भावना पर रहता है । **प्रभुकृपा से हम तो साफ़-साफ़ कहते हैं कि हम में कोई कुछ भावना नहीं । जो कोई जैसी भावना या जैसी वृत्ति देता है, उसी अनुसार अंदर आता है और जाता है । खाली के खाली और भरे के भरे । इसलिए कितनी ही बार नर्क भी आता है तो कहीं ताज़े मधुर फूलों की सुवास भी आती है ।** प्रभु के इस

द्वन्द्व की रचना में मानो कि वह स्वयं है ही नहीं, ऐसे खेल खेला करता है । और वह स्वयं उन सभी में होने से उन सभी का, सभी परिस्थिति में उनकी उनकी जागृति और भावनानुसार विकास हुआ करता है ।

'बिगड़ी सुधारे कौन ?' यह भजन साधनाकाल में बहुत बार मैं गाता रहता । इसलिए कृपाकर अपनी पतवार प्रभु के हाथ में सोंपकर भव सागर में कूद पड़ने की आवश्यकता है । यह नौकरी, बच्चे यह सब तो ठीक है। **हमें सचमुच की नौकरी तो भगवान की करनी है ।** चेतन के प्रति तुम्हारी भावना इस **जीव** के साथ संबंध में आने से सारे ताने-बाने बुन चुके हैं, ऐसा यदि भूलचूक से भी लगा हो तो वैसी समझ योग्य नहीं है । प्रभुकृपा से यदि पुरुषार्थ हुआ करे तो धीरे-धीरे जागृति अवश्य आएगी । मात्र अनंत और अटूट धीरज रखकर अध्यवसाय, उत्साह और सावधानी से अपने प्रयत्न में लगे रहें; जीव अंत में जरूर सफल होता है । जो अंत तक लगा रहता है और जिसकी भावना में पारदर्शक प्रामाणिकता, हृदय की वफ़ादारी, नेक दिली और दानत होती है, वह प्रकृति के अनेक स्तरों में से आरपार निकलकर भी व्यक्त होने को प्रयत्नशील रहा करता है । ऐसी भावना यदि आए तो वह एक की एक दशा में नहीं पड़ा रहता । जैसे **जीव** प्रकार

की वृत्ति स्थितिचुस्त रह नहीं सकती, यह तो अनुभव की बात है, उसी तरह उपरोक्त तथ्य समझना है ।

इसलिए पुनः तुम्हारे मन के चेतन को प्रार्थना है कि उपरोक्त बताई हुई भावनानुसार प्राण लगाकर साधन को पकड़े रहने का हो तो बहुत उत्तम और उसमें जहाँ रुकावट आये उसे ज़रा भी वश न होना । और वह उसका विरोध करेगा तो फिर वह स्वयं मरेगा । इसलिए कृपाकर चेतो और जागो । इतनी दुबारा तुम्हारे हृदय को प्रार्थना है ।

सुमेल न जागे तो

स्वजन : कभी तो ऐसा लगता है कि जीवन में सुमेल होगा ही नहीं । जब घोर निराशा होती है, तब मरने का मन होता है ।

श्रीमोटा : संसार-व्यवहार में ऐसे बहुत उदाहरण मिलते हैं कि ऐसा सुमेल ही न हो वैसा माननेवालों के बीच भी सुमेल हुआ हो । हमारी अपनी वृत्ति पर उसका आधार है ।

किसी के साथ अपना मेल बिठाना, यह बहुत कठिन बात मुझे नहीं लगती । ठेठ गरीबी में जीवन बिताया होने से और अनेक कुटुंबों में रहना पड़ा होने से ग़रीबी के कारण बहुत बहुत सुनने को मिला है । अन्याय होते रहे हैं अनुभव किया है । फिर भी हृदय में लगे रहने की समझ जाग्रत हुई हो, तब वैसा सरलता से हो सकता है ।

पुरुष जाति ने स्त्रियों पर बहुत अन्याय किये हैं । उसके प्रायश्चित्त रूप में हमें उनके साथ रहना हमारा धर्म है, ऐसा मुझे तो लगता है और मरण की चाहना यह तो निराशा की अंतिम पराकाष्टा है । हमारे हिस्से आया धर्म मर्द की तरह हिंमतपूर्वक पुरुषार्थ से किसी आशा, अपेक्षा रखे बिना पालन करने में सच्ची मानवता निहित है ।

नामस्मरण की धुन तुम्हें अभी लगी नहीं है । इसलिए कृपाकर थोड़ी भावना रखकर मेहनत करोगे तो कोई बाधा नहीं आएगी । जो कर्म मिला है, उस कर्म से भाग खड़े होना उसे तो मैं कायरता मानता हूँ । तुम दोनों प्रेमभाव से रहो और भगवान का नामस्मरण किया करो, ऐसी मेरी तो आशा है । जितना हो सके उतने आनंद में रहकर और जीकर भगवान का नाम लेना है ।

ज्ञानपूर्वक दुःख

स्वजन : आप समझाते हो उस तरह आचरण करने पर दुःख का अनुभव होता है । पर जिस क्षण समझ जागती है, उससे हलकापन लगता है सही ।

श्रीमोटा : प्रेमी हृदय का मर्म हृदय में गहरे उतारने पर अनेकबार सालता है । थोड़ी लगी हो और चोट लगे, तब बहुत अधिक लगता है । इसलिए यदि लगाना ही है तो भाव ही लगावें । भाई साहब ! इतनी कृपा करना । हमारे लिए जो कोई दुःख उठाता है, वह हमें प्रिय लगता

है । परन्तु उस दुःख में यदि ज्ञान हो तो वह अनंत प्रकार का सुख देता है ।

जीवन में जो संग्राम है, उस संग्राम को खेलने का तो जीवन में जोश पैदा होता है । जीवन में संग्राम खेलने के लिए मरजिया जैसा निश्चय पैदा हो । जिसमें जीवन न्योछावर करने की ताक़त जन्मी हो, वैसे शूरवीर का **इस जीव** को काम है ।

सदा ही आनंद में रहे । यदि वह न आया तो जीये तब भी समान और न जीये तब भी समान ।

सच्चा संबंध

स्वजन-बहन : हम दोनों एक दूसरे के साथ रहें, ऐसी हमारी तो भावना है पर कोई हम दोनों के बीच विक्षेप डाले तो क्या करें ?

श्रीमोटा : हमें यदि पति के साथ रहना हो तो पति जैसा नामस्मरण करना ही चाहिए । रथ के दो पहिए एक प्रकार के और समान रीति के हों तो ही रथ ठीक से चलेगा । तुम दोनों परस्पर एक दूसरे को बहुत प्रेमभाव से चाहो और वह चाहना उस चेतन के लिए चाहना है ।

'परस्पर चाह चाहकर, तुम्हें चाहना हम सीखते ।'

मेरी तो प्रभुकृपा से साधनाकाल में भी ऐसी ही पद्धति थी । आज भी प्रत्येक **जीव** को उसकी प्रकृति द्वारा

उस ढंग से चेतन का संबंध जाग्रत करने के लिए ही उसमें प्रवेश करता हूँ ।

प्रभुकृपा से जो जो स्वजन मिले हैं, उन **जीवों** में किसी न किसी तरह **इस जीव** के प्रति राग पैदा कर देना है कि जिससे वे **इस जीव** से कभी अलग न हो सकें ।

भगवान का नामस्मरण खूब लेते रहें ।

तुम दोनों के बीच यदि कोई ग़लत ढंग से विक्षेप डाले तो कृपाकर जाग्रत बनना । हमेशा का साथी कैसा है, कौन है, उसकी भावना कैसी है, उसका being कैसा है, इन सबका विचार करें । तुम दोनों परस्पर भावना को जाग्रत करने और चेतनाभाव से जीने की मुझ पर कृपा करो तो जीना कृतार्थ होगा ।

इस संसार में तुम दोनों **जीव** का यह एक कोई **जीव** सच्चा सगा है, वह निश्चित तौर पर गले उतार सको तो उतारना, वैसा नहीं कर सके तो तुम जानो और तुम्हारा देव जाने ।

भगवान समर्थ है । सभी के लिए सब कुछ करता है । परन्तु हमारे स्वजनों को वह हमारा नहीं बनाता । यही उसकी सबसे बड़ी कमज़ोरी है । 'उस'की नहीं पर स्वजनों की ही है । इसलिए भगवान की कृपा से सब कुछ जागें तो कुछ जीने में रस जागे । इसलिए दोनों कृपा करना । दया बरसाना ।

परस्पर की बाधा

स्वजन : मैं उच्च स्वर में भगवान का नाम लेता हूँ तो मेरी पत्नी को कभी अच्छा नहीं लगता । 'सिर दर्द करता है' ऐसा कहती है । स्त्रियों का स्वभाव ऐसा क्यों ?

श्रीमोटा : जपयज्ञ वाचिक जितना बढ़े, उतना उत्तम है । जप करने में पत्नी की नाराज़गी मोल लेनी पड़े तो जरूर मोल लें । जप सुनने में उसका सिर दर्द करता है तो वह दूसरी जगह सोये । दोष मात्र एक का नहीं होता, दोष दोनों का होता है । जब हमें प्रत्येक जगह न अनुकूल आये तो दोष हमारा है, ऐसा जानें ।

जीवन में परस्पर सुमेल की भावना हृदय में प्रेमभाव पैदा हुए बिना कभी भी संभव नहीं, यह निश्चित जानो । प्रत्येक समझदार और शिक्षित पुरुष स्त्रीजीवन को अमुक प्रकार का खुल्लापन प्राप्त हो ऐसी और उसके जीवन को विकसित होने की सहृदयपूर्वक अनुकूलता कर दें, क्योंकि स्त्रियों में भी भावना की लता होती है ।

आज स्त्रियों का जीवन बिलकुल कुचली गयी स्थिति में है । वह ऊपर उठे बिना भारत की स्वतंत्रता कभी भोगी नहीं जा सकती, यह निश्चित जानो । हमें तो घर में बैठे-बैठे यज्ञ करना है । उस यज्ञजीवन में हमें स्वयं आहूत होकर सर्वस्व समर्पण करके आहुति दिया करनी ही है ।

ऊबकर या त्रसित हो या हैरान होकर या परस्पर मन में ऐसे या तैसे होकर इकट्ठे जीना इसमें कोई सार नहीं है। इसलिए परस्पर समझकर चलेंगे और परस्पर प्रेम से एक दूसरे को हृदयपूर्वक चाहकर परस्पर को अपने-अपने दृष्टिबिन्दु से उदार मन से समझ रखेंगे तो कुछ भी उलझन नहीं होगी ।

हमें सर्व की प्रकृति में मिलकर और एकरस होकर प्रभुकृपा से उन-उनके जीवन में मिलना है ।

पति-पत्नी का व्यवहार

स्वजन-बहन : मोटा, हम दोनों के बीच विरोधी भाव का शमन हो, यह कैसे करें ?

श्रीमोटा : हमारे मन और स्वभाव की संकुचितता का पूरा लय हुए बिना जीवन में सद्भावना का विस्तार नहीं हो सकता । इसलिए हम बार-बार मन और स्वभाव का ठीक से पृथक्करण कर निरखते ही रहें और कहाँ कहाँ संकुचितता, वक्रता है उसे ठीक से पकड़कर उसका जिस तरह लय हो उस प्रकार का उपाय और प्रयत्न किया करें।

जीवन में कोई हमारा शत्रु नहीं, बैरी नहीं । किसी भी **जीव** के प्रति हमारे मन में अन्यथाभाव न रहे, यह हमारे लिए बिलकुल उचित है ।

जीवन में सब तरह से सरलता, शांति फैले उस तरह हम व्यवहार करें । हमारी तरफ़ से उसे अशांत होने का

कोई कारण न हो और भविष्य में वह हमें कहीं कोई बात में अंगुंली न करे, ऐसा हम आचरण करें ।

सभी तरह के आग्रह छोड़ते रहें और तुम भी भगवान का नाम जितना हो सके उतना लेती रहना । नहीं तो भविष्य में गाड़ी के दो पहिये समान नहीं चलेंगे और फिर उपाधि खड़ीं होंगी । मिले हो तब पूरी तरह मिलो और मिलने का अर्थ सार्थक करो ।

पति-पत्नी के बीच विघ्न

स्वजन-बहन : हमारे बीच अभी तक ठीक सुमेल क्यों नहीं होता ?

श्रीमोटा : तुम्हें आग्रहवृत्ति ढीली करने की आवश्यकता है । ऐसा ही होना चाहिए और वैसे ही होना चाहिए, यह वृत्ति ढीली न हो, तब तक दोनों का परस्पर सुमेल नहीं हो पाए । इसलिए हो सके उतना ध्यान रखना और नामस्मरण तो खूब करते रहना । हिलते-डुलते, चलते हुए बस बोला ही करना ।

भगवान का नाम प्रेमभावना से लेते रहना और पति पर आग्रह ढीला करते रहना । वह ऐसा करे या वैसा करे, इसका आग्रह न रखें । सभी को अपने-अपने ढंग से ही रहने दें । तुम दोनों के बीच जितना परस्पर सुमेल हो और एक भावना से रहा जाय उतनी उत्तम बात है ।

पति-पत्नी और पूर्वग्रह

स्वजन : मोटा ! मन में किसी के विषय में किसी

भी प्रकार का पूर्वग्रह बैठ गया होता है, उसके बाद जल्दी हटता नहीं ।

श्रीमोटा : किसी भी प्रकार का किसी भी के विषय में पूर्वग्रह हो गया हो तो आज या कल वह ऊपर आये बिना नहीं रहता और वैसे पूर्वग्रह अनेक प्रकार के होते हैं । उन सब को संग्रह कर रखना–दबाये रखना अथवा तो ऐसी दूसरी रीति से मानो न हों, तब भी वे हों उस तरह से पड़े रहा करते हैं । वे सभी जैसे हैं, वैसे हमें रखना है या चलने देना है या निकाल देना है ? किसी स्वजन को देखते हुए मार डालना शायद सरल हो, पर ऐसे पूर्वग्रह आदतें-मान्यताएँ-सहजबुद्धि इन सब को मार डालना और वे भी हमारे स्वजन हैं, शायद स्वजन से भी अधिक स्वजन हैं–इन सबको मार डालना तो बहुत ही कठिन है और सचमुच में तो जिन्हें अपना माना हो उनके आगे किसी भी तरह व्यक्त होने में कोई आपत्ति नहीं हैं ।

जीवनविकास की दृष्टि से विचार करना हो तो ये सारे स्वजनों को मारे बिना हम आगे नहीं जा सकते । जीवनविकास के पंथी को तो Frankness (स्पष्टवादिता) अर्थात् सब तरह से मुक्तता और ऐसी दिल की सरलता और कोमलता, साथ ही उन सब का व्यक्तत्व और दर्शन अपने प्रतिदिन के व्यवहार में भी आने चाहिए । ऐसा होगा तभी हम में Frankness आ पाएगी, वैसे ही हमें समझ आती

जाएगी । हमें स्वयं को जीवन के प्रति सचमुच गरज़ जागेगी, तब अपने आप Frank - मुलायम और सरल होते जायेंगे ।

स्वजन-बहन : हम कितना भी कर डालें, तब भी प्रेमभाव न मिलने पर तो हमें दुःख होगा कि नहीं ?

श्रीमोटा : जीवन की महत्ता और महत्त्व इन दोनों को दूर रखें तो भी संसार में अपने पति के साथ सुखी रहने के लिए उसके प्रति किसी भी प्रकार का पूर्वग्रह मन में बन गया हो, वह टले यह आवश्यक है । उसका हम पर हृदय का सचमुच का प्रेम नहीं है, यह मानने से दुःख और क्लेश तो हमें होगा । यदि मानो कि सचमुच वैसा नहीं है, भाव नहीं तो उसका कारण भी हम स्वयं ही हैं । हम में ऐसी कला व्यक्त होनी चाहिए कि जिससे सामनेवाले को हम आकर्षित कर सकें । **यदि मैं पत्नी होता और मेरे पति मुझे ठीक से प्रेम न करते होते तो अनेक तरह से उनके इतने सारे उपयोग में आऊँ, काम में आऊँ और एकदम सरल भाव से मेरी अपनी प्रकृति और स्वभाव को उन पर लादे बिना, संपूर्ण निराग्रह भाव से और मुझे स्वयं उसके भाव को प्राप्त करना है, वैसा उद्देश्य से इतना सारा उस पर वारी जाऊँ और जीवन के अनेक क्षेत्रों और पहलुओं में उसे इतना तो संतोष दूँ कि वह मुझे प्यार किये बिना रह ही न सके ।**

स्वजन-बहन : पर सचमुच उन्हें मेरे प्रति बिलकुल भाव नहीं है ।

श्रीमोटा : यह तो हम-तुम अकेली नहीं ऐसे बहुतों को मैंने कहते सुना है कि 'मेरे स्वजन को मेरे प्रति भाव नहीं है ।' परन्तु ऐसा बोलनेवाला कोई भी जीव कभी ऐसा नहीं सोचता कि उस विषय में मुझ में कोई कमी हो सकती है । फिर कोई अक़्ल का 'खाँ' मुझे ऐसा कहता है कि 'उपरोक्त कहा वह सच है, किन्तु किसी की पत्नी बहुत कुरुप हो और उसके पति का उसकी ओर भाव ना जागे तो क्या करना चाहिए ?' यह प्रश्न सोचने जैसा है सही। मानवजीवन यह मात्र स्थूल प्रकार का नहीं होता । बैरी में भी निवास करके उसे अपना बना लेने की एक कला है सही । कुरूप स्त्री होने पर भी जीवन के एक-एक पहलू और क्षेत्र में उसकी अधिक नज़रों में न आये बिना उसे इतनी अधिक सरलता और मदद करने का आ जाय कि स्वयं उसमें तन्मय हो जाय तो कभी उसके पति का ऐसी कुरूप पत्नी के प्रति प्यार जागने-मान जग जाने की संभावना है सही ।

हमारा पति यदि किसी दूसरी स्त्री या लड़की को चाहने लगा हो, उसका हमें जो शूल दिल में पैदा होता हो और उसके लिए हम अनेक गुनें मन में या मन से धुँआफुँआ हुआ करते हैं । यह एक बड़ी गंभीर समाधान

न हो सके ऐसी स्थिति है । हमें अपने पति को यदि हृदय से सचमुच चाहते हों –फिर वह हमें चाहे या न चाहे उसकी परवाह किये बिना–तो ऐसी सभी समाधान न हो सके ऐसी स्थिति ज्ञानपूर्वक समझते हुए हमें सुलझानी चाहिए । हमारा पति हमें चाहता नहीं, यह भी कहीं भ्रमणा होने की संभावना हो सकती है ।

प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार चाह सकता है । शरीर को चाहने की स्थिति में और क्रिया में तो वह एकसमान रूप से व्यक्त हो यह बात सच है । किसी की ऐसी भी ख़ासियत होती है कि एक भी शब्द उसके साथ न बोलते हों पर उसमें उसके प्रति भाव होता है सही । कितने ही भाव को 'अंदर' रखा करते हैं, कितने ही भाव को व्यक्त करते रहते हैं । जो भाव को अंतर में रखा करते हैं, वह भी कभी तो व्यक्त होता है, ऐसा दिखे बिना नहीं रहता । प्रत्येक बार वह भाव अपने ढंग से व्यक्त होता रहता है, परन्तु मेरी समझ से यह प्रश्न ग़लत हैं । हम कितने न्योछावर होकर चाहते हैं, पहले यह सोचें । हमें तो प्रेम लेना है, माँगना है, यह सब सही, पर प्रेम देना है और संपूर्ण हृदय से चाहना है, यह हमें करके नहीं बताना है । बस तब, हम ऐसे ही कर बतावें, इससे जीवन जी सकेंगे ।

प्रणयत्रिकोण

(एक बहन के जीवन में प्रणयत्रिकोण होने पर, उसे मार्गदर्शन देते हुए ये छः पत्र लिखे गये हैं ।)

(१)

प्रिय बहन, ता. १६-४-१९५४

तुम्हारा पत्र और उसके साथ का कागज़ मिला है । हमारा आदर्श तो निरपेक्ष प्रेम है । हम जिसे चाहते हैं तो उसके लिए हम चाहना नहीं करते, पर हम अपने लिए करते हैं । हमारा जो किसी को चाहना है, उसके पास अमुक प्रकार के व्यवहार की अथवा तो उसकी अमुक तौर तरीक़ों की या तो ऐसी किसी भी प्रकार की आशा, अपेक्षा दिल में रखें तो वैसा हमारा 'प्रेम' नाम के लिए योग्य नहीं है । हमसे इतने ऊपर न चढ़ा जा सकता हो, उसमें कोई अड़चन नहीं । परन्तु अपना प्रामाणिक प्रयत्न तो उस दिशा के प्रति हो अथवा होना चाहिए । ऐसी दिशा के प्रयत्न करते-करते भले ही हम अनेक बार गिरें, तब भी हमारा मुख सदा हमारे आदर्श के प्रति ही यदि रहा करे और हमारी ऊर्ध्वगति उसके प्रति चेतन हो तो फिर हमें निराशा नहीं मिलेगी ।

संसार में कोई भी हमें मूर्ख बनाये, हमारी हँसी उड़ाये, हमें बिलकुल बुद्धू समझे तो उसे समझने दो, हमें तो संबंध है एकमात्र चाहने के साथ । किसी के कहने से,

उस के मानने से या समझने से हम जैसे होंगे उसमें कोई अंतर नहीं हो सकेगा । हम जो होंगे वही रहेंगे । संसार तो अनेक उपनामों से हमें संबोधित करेगा, परंतु यदि हम मन में न रखें और उसके आघात-प्रत्याघात को सन्तुलित रखकर यदि प्रभुकृपा से तटस्थ रह सकें तो अंत में हमें मूर्ख गिननेवाले स्वयं मूर्ख बननेवाले हैं । विशेषता तो उल्टी इसमें है कि हम अपने चाहनेवाले की प्रकृति, स्वभाव जानने पर भी उसे उतने ही प्रेम से चाहें और उसका उल्टा सीधा होने पर भी उसकी घटना पर हमारा लक्ष एकाग्र और केन्द्रित न होने दें यानी कि उस घटना को महत्त्व ही न दें । फिर हमारे अपने प्रियजनों पर खिसियाने की भी आवश्यकता नहीं । उसे बताने की भी आवश्यकता नहीं, उसे खुला करने की भी जरूरत नहीं, तब भी मानो कि हमें उसका अमुक न रुचे तो विरोध करने की या तो क्लेश-कलह या ऐसा कुछ करने से उसकी प्रकृति, स्वभाव सुधर ही जानेवाले है, ऐसा कुछ नहीं । और इससे तो हम अधिक दुःखी होंगे । वह तो येनकेन प्रकारेण स्वयं को जो पसंद हो वैसा करने में समर्थ है । जबकि हमारी स्थिति उस प्रकार की नहीं है । किसी के मानपान रक्षा करने, आदर्श तो, उपरोक्त बताए प्रेम की भावना में है और वही सच्चा मार्ग है, उसकी चढ़ाई कठिन तो है । और वह सच्चा तप है, ऐसा यदि मानें तो फिर

राह में आ मिलते ऐसे प्रसंग ये तो हमारे अपने दिल की भावना का प्रकार कितना उर्ध्व हुआ है, उसे निरखने के लिए यह तो एक दर्पण है, कृपा है, मौका है । **सामने से मिलते ऐसे अघटित प्रसंग में भी हम ऊपर तैरते रह सकें वही सच्चा जीवन है ।**

दूसरे चाहे कैसा भी आचरण करें उसके साथ हमें कोई वास्ता नहीं । हमारा संबंध तो अपने जीवन के साथ और जीवन के आदर्श की भावना के साथ है । सभी कोई सुगम सुगम और सरल हो वहाँ भावना को चेतनाशील रखने के लिए कोई संघर्ष नहीं करना पड़ता । **साधारण और उल्टेसूल्टे बहते प्रचंड प्रवाह में हम भावना के शिखर पर हिलेडुले बिना स्थिर रह सकें, वही जीवन की सही पूँजी है, शक्ति है, गौरव है और शोभा है, हमें वैसा होना है ।**

मैं किसी की पत्नी होऊँ और मेरा प्रेमपात्र मुझसे मानो कि बेवफ़ाई करे तो भी मैं तो उसे चाहने को ही समझूँ - अपने प्रेमी को जिसमें वह सुखी हो अथवा जिसमें उसे सरलता हो, उसमें हमें सहायक होना है । जगतव्यवहार के नीतिनियमों के सामान्य स्तर पर मानो कि वह योग्य न लगे तो हम स्वयं ही अधिक अशांत और दुःखी हो जाएँगे । फिर हमारा ऐसे प्रकार का विरोध नहीं है कि जिससे उसकी सक्रिय, सीधी असर पैदा हो सके ।

ऐसा विरोध तो उल्टा हमें स्वयं ही परेशान करनेवाला होगा। हम स्वयं मन से दुःखी होकर भटकते रहें फिरे और सामनेवाले को भी ऐसी स्थिति में हम डालें तो उस परिस्थिति में न हमें सुख मिलेगा और न उसे सुख मिलेगा ।

हमें आघात लगता है, उसका मूल हमें जाँचना चाहिए । हमें विश्वास में लेकर वह (पति) ऐसा करे और अपनी सारी परिस्थिति के विषय में बतावे और अपना दिल अमुक के प्रति स्वाभाविक रूप से रहता है, आकर्षित होता है, इसलिए 'दया करके मुझे सुखी करने में तुम मुझे मदद दो, प्रोत्साहन दो, प्रेरणा दो ।' इसतरह यदि अपने को सच्चाई से अवगत करे तो मैं यदि पत्नी होऊँ तो, अवश्य उसे उस ढंग से सुखी होने दूँगी । दुनियादारी का यह मार्ग नहीं है, इसका मुझे पता है । दुनियादारी तो उसे तुच्छ समझ, उसे दुःखी करने एकदम टूट पड़ेगी । उस तीसरे व्यक्ति को भी संसार में सुख न मिलने दे । इतना ही नहीं, पर उसे खराब करने स्वयं से हो सके उतना सब करेगी । मानो कि हम भी दुनियादारी की तरह ही आचरण करें तो भी उपरोक्त तरह से हम व्यवहार नहीं कर सकते । वह राह हमारे लिए योग्य भी नहीं है । कोई जीव मन में दंश रखे सही और उस दंश की असर से प्रेरित होकर उसे अपने आचरण में भी पूरी तरह ला सकता है । कोई

भी जीव दंश रखते हैं सही, परन्तु उसकी असर से प्रेरित होकर उसके अनुसार का आचरण करने में शक्तिशाली नहीं होते ।

कितने ही जीव अपकृत्य के सामने सिंह की तरह बदला लेते हैं । जबकि कितनों को ऐसा अपकृत्य अच्छा नहीं लगता और उसे पछाड़ने की भी इच्छा रखता है, पर उस तरह करने में वह सफल नहीं होता । इसलिए वह अपनी लाचारी के कारण अधिक से अधिक दुःखी होता है । परंतु हमें तो दुःखी नहीं होना है ।

सिवा वह पुरुष है और हम स्त्री । हमारे समाज में स्त्रीजीवन की अमुक प्रकार से, अमुक अंश में लाचारी है, वह मुझे खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है । ऐसा जुआ को फेंककर संपूर्ण निर्भ्रांत रूप से मुक्त हो हम विचर सकें, ऐसी प्रतिभावाले और शक्तिशाली हम हुए नहीं हैं। फिर पुरुष हमारा बहिष्कार कर सके और हम ऐसा करने जाएँ तो हमारा अपना ही वातावरण हमें सहन नहीं कर सकता । मैं स्वयं तो एक ही वस्तु को सब ढंग से सोचनेवाला हूँ । **परवशता से परिस्थिति को स्वीकार करना और लाचारी भोगना, इसका नाम तो मैं मृत्यु गिनता हूँ ।** ऐसी स्थिति तो मैं कभी पसंद नहीं करूँगा, इससे तो जो परिस्थिति हो, उस परिस्थिति को योग्य ढंग से स्वीकार कर उसका समाधान करके हमारे मन की शांति

और प्रसन्नता बनी रहे ऐसा आचरण करें । ऐसे आचरण से जीवन में शक्ति और गुण दोनों प्रगट होंगे । कृपा करके तुम काँप मत उठना । होने का हुआ करेगा, किन्तु हम दब न जाएँ, कुचले न जाएँ, यह आवश्यक है ।

(२)

दि.२२-६-१९५४

किसी को सुखी करना सचमुच प्रामाणिकता से हृदय में हो तो यह उत्तम है और उसमें विशेषकर स्वयं को प्राप्त हुए, बने और माने हुए स्वजन को वैसा करना प्रभुकृपा से हो वैसा हो तब उसमें हमें जो कुछ करना पड़ता है या तो त्याग करना आता है, ऐसा सब यदि सचमुच हृदय की उमंग से हो तो सचमुच प्रभु की भक्ति है । जगत में, व्यवहार में, संसार में और इस सकल सृष्टि में सभी को एक दूसरे के लिए त्याग करना पड़ता है । त्याग के बिना यह संसार चल भी नहीं सकता । त्याग से तो जीवन पनपता है । और त्याग यह यज्ञ है और उसमें से ही जीवन का सच्चा विकास अनुभव कर सकते हैं । जब किसी को सुखी करने का दिल हो और उसके प्रति हमारा दिल प्रेम के भाव से उछलता हो, तभी ऐसा हो सकता है । बुद्धि की समझ से किये निर्णय लम्बे समय तक टिक नहीं पाते, क्योंकि बुद्धि से किये निर्णय और उस समय की हमारी वैसी बुद्धि भी निश्चयात्मक स्वरूप में नहीं होती

है । उसमें भी स्वरूप बदलते रहते हैं और उसकी कक्षा भी बदलती रहती है, तब दुबारा दूसरे ढंग से सोचने लगते हैं । इससे तो अपने स्वजन के लिए दिल का प्रेमभाव जितना हो, उसे उतने ही उत्कट भाव में एकाग्रता से लगा लगाकर उनके लिए हुए निर्णय को हम यदि हृदय के सच्चे एकाग्रभाव से व्यवहार में लाएँगे तो उससे हम में प्रामाणिकता, सच्चाई, वफ़ादारी, भक्ति—ये सारी भावनाएँ विकसित होंगी । जो कुछ करते हैं, वह हमारे स्वयं के विकास के लिए करते हैं, ऐसी भावना विशेष रूप से ज्ञानपूर्वक की जैसे दृढ़ होती जाएगी और उसका निर्णयात्मक स्वरूप दृढ़ होता जाएगा, वैसे वैसे किसी के भी प्रति आशा-अपेक्षा हमारे मन में प्रगट नहीं होगी । तुमने अपने पति को सुखी करने का जो निर्णय लिया है, वह हमारे स्वयं के हित के लिए है, न कि पति के लिए । ऐसी भावना से इस प्रसंग को हम प्रेमभक्तिपूर्वक स्वीकार करेंगे तो भविष्य में भी इसप्रकार की उलझनें हमारे सामने नहीं आएँगी ।

सामान्य तौर पर हमारे समाज की एक पत्नी से अधिक तुमने जो अभिगम अपनाया है, वह कक्षा बहुत ऊँचे प्रकार की है, भावनाप्रधान है । ऐसे भारी आघात भी तुमने अनुभव किये हैं और तुमने ठीक मात्रा में शान्ति और समता बनाये रखी है । यद्यपि कुछ देर स्तब्ध हो गये

पर दुबारा स्वस्थता प्राप्तकर तुमने सच्चा निर्णय प्रभुकृपा से लिया जो बहुत आनंद की बात है ।

अपना स्वयं का स्वजन हो, मानो कि वह दोष करे या अन्याय करे और मान लो, अधिक से अधिक हमारी अवगणना करे, तब भी हम उसे सच्चे हृदय से चाहते हैं, उसमें ही हमारे जीवन की सही सार्थकता है । अपना स्वजन मानो कि स्वैरविहार करता हो, इससे अमुक ढंग से हम उसके लिए मानें, समझें, वह भी योग्य नहीं । नैतिक मूल्यांकनों की कक्षा भी अलग-अलग बदलती रहती हैं । वह कोई अंतिम सत्य नहीं हो सकती ! मानव अमुक-अमुक करे इसके लिए वह बिलकुल खराब ही है, ऐसा मान लेना निश्चित ही भ्रम है । एक मनुष्य अनेक को चाह सकता है और अनेक के प्रति वफ़ादार एवं प्रामाणिक भी रह सकता है । इसका मुझे स्वयं अनुभव है । किसी को भी अच्छा मानने और समझने में कल्याण हमारा खुद का है । इससे हमें तो उसे चाहना ही है । वह कुछ भी करे, उसके साथ हमें कोई निसबत न होनी चाहिए ।

(३)

दि.३०-६-१९५४

तुम्हारे सारे पत्र पढ़े हैं । तुम्हारी भावना और शक्ति के लिए हृदय में एक प्रकार का भाव जागता है । हमें जीवन में कुछ करना है और कोई एक अलग ही दिशा

में जीवन का वहन करना है, ऐसी नवसर्जन की भावना जिस **जीव** को जागी है, वैसे **जीव** को वैसे जीवन में कितनी ही बार नश्तर करने की परिस्थिति जाग जाती है । प्रभुकृपा से जीवन में आघात तो अनेक प्रकार के और अनेकबार आनेवाले हैं । उन आघातों को हम कैसे सह सकते हैं और उन्हें किस भाव से स्वीकार कर उस अभिगम के आधार पर जीवनविकास के प्रति मुड़ सकते हैं, उस पर सारा आधार रहता है और यदि ऐसा लाभ ज्ञानभक्तिपूर्वक लिया करें तो जीवन में तो आनंद ही प्रगटेगा । इस जीवनव्यवहार में सब सुगम-सुगम सरल हुआ करे ऐसा कभी नहीं होनेवाला है । हम में सब एकदम उथलपुथल हो जाय, ऐसी परिस्थिति और संयोग भी जीवन की भावना को विकसित करने के लिए और उसे हमारी खुद की भावना की स्थिति क्रिस प्रकार की है, उसे अनुभव करने के लिए वैसा वैसा होना यह बहुत आवश्यक भी होता है ।

वर्तमान में एकपत्नी व्रत का कानून है । पहले ऐसा न था । यद्यपि स्त्रियों को भी वैसा हृदय हो तो वैसा अधिकार होना चाहिए । यह बात फिर बिलकुल अलग है । मेरी दो-चार पत्नी हों और मेरे हृदय में ऐसी भावना हो तो मैं सभी को सच्चे हृदय से चाह सकूँगा सही । परंतु वे बहनें इसी अनुसार समझ पाती हैं या नहीं, वह एक

अलग प्रश्न है । परन्तु मेरे हृदय का प्रामाणिक और वफ़ादार प्रयत्न तो वैसा ही होगा । उनमें से एकाद कोई अन्य व्यक्ति के साथ बहुत तुच्छता के भाव से व्यवहार करे और हमारे हृदय के यथायोग्यपन के भाव को उसके सही स्वरूप में न पहचान सके और हमें स्वयं को दूसरी तरह समझे या गिने तो वह हमारे विकास के लिए उत्तम है । मैंने स्वयं महात्मा गांधीजी के आश्रममें बहुत वर्षों तक काम किया, तब सब मुझे 'बुद्धू' गिनते और समझते थे तथा उस ढंग से मेरे साथ व्यवहार करते थे । कन्या छात्रालय की बहनें भी मेरी मज़ाक़ उड़ातीं । मुझे पागल-पागल भी कहतीं । इससे मुझे तो प्रभुकृपा से आनंद आता, इसलिए तुम मेरा दृष्टांत लेना ।

(४)

दि. ६-७-१९५४

किसी भी तरह हृदय को दुःखी न होने दें । दुःखी हृदय सही समझ पाने की तत्परतावाला नहीं हो सकता । पति के प्रति तुम्हारा अभिगम बिलकुल उचित है । परन्तु वह मुक्त हृदय से उसे वैसा स्वीकार कराकर दिल से उसे मात्र चाह सकते हो तो ही फिर तुम दोनों आनंद से प्रगट सको ।

हृदय के पड़े घाव रूझते नहीं और घायल हृदय फिर आनंद से एक नहीं हो पाते, ऐसा गीति साहित्य के

कविओं ने गाया है । परन्तु मुझे तो यह बात सच्ची नहीं लगती । यदि हमारे हृदय की सचमुच भावना हो और यदि हम चाहनेवाले को हृदय के प्रेम उल्लास की भावना से चाहते हों तो पड़ी हुई दरार दिल अवश्य जोड़ सकता है । हृदय की प्रेम करने की और चाहने की शक्ति अनंत गुनी है । एक साथ अनेक को वह चाह सकता है और उसमें कम अधिक ऐसा कहीं कोई प्रमाण नहीं होता है । परिचय, सहवास, निमित्त और हृदय का जैसा उछाल उसी के प्रमाण में सभी को चाह सकता है । अतएव हमें हमारा कोई स्वजन नहीं चाहता, ऐसा मानना हृदय की संकुचितता है । जबकि तुम तो सदा ऐसा लिखती रही हो कि तुम्हारे पति का तुम पर बहुत भाव है और उनके विषय में हृदय में दुःख नहीं हुआ है और तुमने उन्हें मुक्त किया है और हृदय की गहराई से तुमने उनका सुख चाहा है, वह भी अच्छी बात है । परन्तु तुम्हारे या तुम्हारे पति के हृदय में किसी प्रकार का दंश नहीं रहना चाहिए । तुम दोनों फिर से हृदय से एकदूसरे को चाहने लगो और आनंदप्रमोद में प्रवर्तित हो सको, तभी हमें सुख होगा । हमें भी हृदय की संपूर्ण शान्ति तो कहाँ से हो सकेगी ?

(५)

दि. १३-७-१९५४

हमारे उदार हृदय की कोई कदर न कर सके इतना

ही नहीं, परन्तु हमें खुद को बुद्धू और मूर्ख समझे तो इससे एक सामान्य स्त्री में अवश्य बैर की आग प्रज्वलित हो जाएगी और उसका बदला लेने को आतुर हो जाय, यह बिलकुल स्वाभाविक है । परन्तु तुम्हें मैं एक सामान्य जीव की कोटि का व्यक्ति नहीं गिनता । इसलिए मेरी तुमसे इससे अधिक त्याग और उदार हृदय की माँग मेरी तो हो, वह समझ सकोगी । इसलिए अब इस प्रकरण का अंत कर दो । जब से जाना है, तब से हृदय में चैन नहीं है । घूमाफिरा करता हूँ, इधर-उधर चक्कर और फेरा लगाते रहता हूँ । दूसरे कामों में भी हृदय को पिरोता हूँ । पत्रव्यवहार भी करता हूँ । परन्तु इस दोषारोपण में से निकालकर तुम्हें संपूर्ण स्वच्छ-विस्तृत देखने, मेरा हृदय अधीर बना है । इससे भी अधिक मन को उकसाहट कराए ऐसी बात से प्रभुकृपा से हम स्वस्थ रहें, तब जीवन में जोश प्रगट हुआ है, ऐसा मान सकते और अभी मैं तो कहता हूँ कि यह घटना उस की कृपा से एक नश्तर है और तुम उसे ठीक से सह सकी हो । नश्तर के समय कुछ तो वेदना होती है और रक्त भी निकलता है । इतना भी तुम्हें न लगे, तभी मुझे सही गुरुदक्षिणा मिली गिनी जाएगी ।

जीवन में किसी भी एक व्यक्ति के प्रति हमें हृदय में हृदय से हृदय का सचमुच प्रेम जगा हो तो वैसा प्रेम किसी भी तरह का त्याग सहज रूप से करवा सकता है ।

(६)

दि.२४-७-१९५४

हमारे लिए तो एक ही ध्येय है कि हमें जिसे हृदय से चाहना है, उसे चाहना ही है । फिर उस व्यक्ति का क्या हो, वह तो उसे स्वयं सोचना रहेगा । हम जिसे चाहते हों, उसकी स्थिति कैसी भी हो या बने तब भी हमारे हृदय का भाव कम तो हो ही नहीं । किसी प्रसंग में प्रकृति के नियमानुसार चढ़ाव उतार आते हैं । परन्तु अधोगति में तो हमारे हृदय की सहानुभूति सविशेष प्रगट होनी चाहिए । तभी वह सही भाव है, परन्तु दो व्यक्तियों के प्रश्न की अपेक्षा अब तो तीसरे व्यक्ति का मुद्दा तुम्हारे पत्र में उपस्थित हुआ है । इसलिए उस ओर एकाग्र और केन्द्रित लक्ष्य में रख जो लिखना प्रभुकृपा से होता है, उसे तुम सोचना । मेरा तो सभी के साथ भाव है । कोई भी सामान्य जीवकक्षा का मनुष्य यानी पति इसप्रकार के संबंध से एकदम मुक्त नहीं हो सकता । तब भी कोई भारी आघात लगे अथवा तो किसी संजोग के कारण स्वयं मरजिया निर्धार करे तो वैसे संबंध से मुक्त हो सकता है सही । परन्तु ऐसे उदाहरण बिलकुल अपवाद रूप गिने जाएँगे ।

अब जो तीसरा व्यक्ति पति की प्रेयसी हो, उसकी दशा सोचने का काम, यदि हमारा उसके प्रति सच्चा भाव हो तो हमारा भी है सही । उसका स्थान समाज में, उसके

कुटुंब-व्यवहार में और दूसरी सब तरह से संभले और उसका जीवन सरल बन सके ऐसी स्थिति पैदा करने में हमें 'अ' और 'ब' दोनों मिलकर 'क' के ('अ' यानी पत्नी, 'ब' यानी पति और 'क' यानी प्रेयसी) सच्चे सहायक बनना चाहिए और मानो कि हम यानी 'अ' पति के साथ के संबंध से मुक्त हो सकें तब भी वह (क) हो सके या नहीं वह भी सोचने जैसा है । फिर दूसरा एक खास मुद्दा खड़ा होता है कि 'ब' और 'क' का जीवन के अंत तक इसी प्रकार का संबंध इसी तरह से टिक सकने की संभावना कितनी है, वह भी सोचने जैसा है । 'क' व्यक्ति सामाजिक इज़्ज़तदार कुटुंबवाला है और उसका व्यवहार भी । वे लोग भी समय आने पर कोई रास्ता जरूर निकालने के लिए कोशिश करेंगे । ऐसा होने पर शायद प्रभुकृपा से वैसा हो जाय तो फिर धीरे-धीरे ब और क का अभिगम घटता जाएगा । संयोगवशात् भी मिलना-जुलना कम होगा और वैसा परिचय कम होता जाएगा, जिससे हृदय का आकर्षण भी घटेगा ।

मानो कि 'क' का अलग होना न हुआ और अंत तक वे दोनों को वर्तमान में जैसे हैं वैसे, रहना बना तो भी उसके अधिकार की बात है । यद्यपि ऐसी संभावना बहुत कम है । 'ब' को अपनी प्रेयसी के प्रति की वफ़ादारी और प्रामाणिकता की निष्ठा अपने हृदय की सच्ची भावना के प्रमाण में प्रगट करके उसे उस स्वरूप में आचरण

रखना चाहिए । यदि सच्ची तरह करना हो तो उसके जीवन का यानी कि क के जीवन का हित किस तरह अच्छे ढंग से हो सके, उस तरह 'ब' को सोचना चाहिए। बाकी 'अ' के लिए 'ब' को 'क' के जीवन में से निकल जाने का कोई प्रश्न ही नहीं । हमारा तो भाव के साथ काम है । हमारा भाव जितना सजीव और यथार्थ व्यक्त हुआ हो तो वह निकल जाने की बात नहीं कर सकेगा । वर्तमान में ऐसा कोई संयोग भी नहीं है । 'ब' स्वयं 'क' के साथ समाज का सामना मोल कर भी शादी करने या साथ रहने की संपूर्ण तैयारी बताए, तब 'अ' के लिए वह प्रश्न खड़ा हो सही । और वैसी सरलता कर देने के लिए हम यानी 'अ' को आनंद से शादी के बंधन से अलग पड़ना रहेगा । तब भी 'ब' के साथ तो अवश्य रहे । यह मेरा मत उस प्रश्न के विषय में है ।

सच्चा पति

स्वजन-बहन : मोटा, आप मुझे पति पर जीवन न्योछावर करने को कहते हो । पर, यह बात समझ नहीं आती । एकरूप होने में शरीर की भूमिका आ जाती है !

श्रीमोटा : जिसे हम 'वर' गिनते हैं, वही हमारे जीवन का स्वामी है, वह स्वामी मिट्टी का देह है अथवा जिसे 'वर' रूप में जाना जाता है, वह नहीं, पर उसमें जो भगवान का चेतन है, वही हमारा सच्चा स्वामी है । हम

तो 'वर' के लिए जो कुछ भी किया करें उस समय उसमें रहे चेतन को हृदय से समर्पित होकर, हमें सब कुछ उसकी खुशी के लिए करना है । हमें उस पर नदी की बाढ़ की तरह समर्पित हो जाना है और मात्र उसके साथ हमारे शरीर के संबंध विषयक नहीं पर उसमें रहे चेतन को अपने जीवन में ओतप्रोत करके उसे हमें खुश करना है । उसके लिए ऐसी भक्तिप्रधान समझ और उद्देश्य जो जो किया करें, उसमें और उस प्रभु का ही मननचिंत्वन दृढ़ करके रखा करें और उसे सब कुछ समर्पण किया करें तो हमारा जगत-संसार सब वही बन जाता है । और किसी भी जगह घर्षण, क्लेश, संताप, दुःख को फिर अवकाश रहता ही नहीं । इस यथार्थता तुम्हारे गले किस तरह उतार पाऊँगा ?

तुम दोनों एकमात्र भगवान के नाम की धुन और भाव से रोम-रोम से रंगकर मस्त हो जाओ और देहभाव में भी उस रंग की असर आए और उत्कट भावमयता में उसका हरा रस अनुभव हो ऐसा हृदय परिवर्तित हो तो कितना और कैसा आनंद ! संसारी रस या आनंद तो क्षणजीवी ही होता है । वैसे रस के पीछे से तो खेद ही होता है । वह भी पूरी तरह योग्य भोगा जाय वैसा तो है ही नहीं । तो फिर समझ कर अब झोंकने में ही सार रहा है । इसलिए कृपाकर मन को समझाकर उसमें ही कूद पड़ें ।

मौन-एकांत की विशिष्ट विधि

स्वजन-बहन : मोटा, इस सर्दियों में हम दोनों ने मौन-एकांत लेने का निश्चित किया है । उसमें आपकी चेतना-प्रसादी से जीवदशा की स्थिति ढीली हो ऐसी प्रार्थना करती हूँ ।

श्रीमोटा : सर्दियों में मौन-एकांत लेने का मन है, तो वैसा भले ही करो । उसमें मेरी पूरी सहमति है । अंतिम सात उत्थान-विधि के नियम अनुसार नहाधोकर सो जाने का । पौने घण्टे तक एकाग्रता से केन्द्रित हो ऐसी प्रवृत्ति में रहना । जीव के साथ उस समय चेतनात्मक रूप से भावना का तादात्म्य यदि कर सको तो अवश्य अनुभव होगा । इस विषय में मेरे हृदय में शंका नहीं है ।

मौन-एकांत की अवधि में गुरुभाव की चेतनात्मक उत्कट भावना हृदयस्थ प्राणवान रहा करे, ऐसा अभ्यास कृपाकर के विकसित करोगे तो लाभकारी ही है । इस अवधि में नामस्मरण के साथ **जीवन** की भावना और **जीवन** का आदर्श साथ-साथ विकसित होते रहें वह भी आवश्यक है ।

स्वजन-बहन : यदि आज्ञा मिले तो उनकी (पति की) इच्छा भी मेरे साथ ही मौन-एकान्त रखने की है । आपके संपर्क में आनेवाले सभी किसी को किसी न किसी प्रकार के उच्च अनुभव होते हैं । हम भी ऐसे अनुभवों

द्वारा आपके निकट रह सकें ।

श्रीमोटा : यदि तुम्हारे पति को छुट्टी मिले तो उसे मौन-एकांत रखना है । परन्तु परस्पर एकदूसरे को बिलकुल देखना नहीं है । कोई किसी का अंग थोड़ा भी न दिख जाय उसकी पूरी दरकार रखनी है । **नहा-धोकर पवित्र होकर भजन गाते-गाते और नामस्मरण करते-करते भोजन बनाना है । हमें स्पर्शास्पर्श भेद नहीं रखना है, यह बात पूरी तरह सत्य है; पर उसका अर्थ यह नहीं कि हमें संपूर्ण शुद्धि और पवित्रता नहीं रखनी है । नहाये-धोये बिना जहाँ कहीं छूकर यदि रसोई बनाई गई है तो जो अणुपरमाणु विशुद्धि वाले नहीं हैं, उनका प्रवेश हम में हो जाता है, इसलिए ऐसी संभाल हमें रखनी है । यद्यपि मानसिक शुद्धि यह हमारे लिए उत्तमोत्तम प्रकार की है । परन्तु इसके साथ ही शारीरिक शुद्धि भी इतनी ही आवश्यक है । इस मिलावट के जमाने में शारीरिक शुद्धि की संपूर्ण योग्यता अनेक लोगों के ख़याल में नहीं आयी है । परन्तु हमें तो उसके अंग उपांग के साथ संपूर्ण संभालना है ।**

जब तक हृदय में भक्तिप्रधान उत्कट भावना पैदा न हो, तब तक कैसे भी अनुभव हों, वे भी मिथ्या जाते हैं । इससे अब भगवान ने सुझाया है कि **जीव** में ऐसी उत्कट भावना का सेवन न करें । अभी तक जो कुछ जिसे जैसा कुछ हुआ है, वह मेरे मन से तो मिथ्या नहीं गया है ।

परन्तु उन्हें ऊपर उठाने के लिए वह अनुभव उपयोगी नहीं हुआ है । यह बात तो निश्चित है । इसके विपरीत बहुत बार उस उस जीव की ओर से अवगणना होने के कारण वापिस आना पड़ा है । परन्तु भगवान जैसा मालिक हैं । वह सर्वसमर्थ हैं । भगवान तो कृपा के ही सागर हैं और हम सभी को अपनी कृपा से विमुख कर सकेगा ही नहीं । इसलिए 'आज' या 'कल' उसकी गिनती मेरे हृदय में नहीं है । परन्तु उसका अनुभव तो हमें होगा ही – इतनी बात निश्चित है ।

कृपा का कार्य

स्वजन-बहन : मुझे अनेक प्रसंगों में ऐसा लगता है कि भगवान की मुझ पर कृपा नहीं है ।

श्रीमोटा : भगवान की कृपा यदि तुम पर न होती तो तुम्हारे पति का तुम्हारे विषय में अभिगम इस प्रकार का हुआ है, वह न होता, यह बात तो निश्चित है । पर इस बात की गंभीरता और उसका रहस्य तुम्हारे गले पूरी तरह नहीं उतरा है और हुई कृपा का तात्पर्य तथा उसकी महत्ता उसके उस प्रमाण में गले में न उतर पाई और दूसरे ढंग से ही समझते रहे, इसलिए कृपा भी क्या करे ? कृपा तो वहीं बरसती अनुभव में आती है, जहाँ उसका ज्ञानभक्तिभाव से, हृदय का न्योछावरभाव नदी की बाढ़ की तरह उत्साह से स्वीकार हुआ करता हो और स्वयं

अपनेआप को इससे कृतकृत्य और धन्य हुआ अनुभव करे और इससे मन को श्रीभगवान की कृपा में सराबोर हुआ अनुभव करे । ऐसा हुए बिना कृपा हो तो भी वह कपटभाव से ही प्रकट होती है । इसे समझना संभव नहीं है ।

तथापि तुम मेरे मन से गुलाम रहो वैसा ही करने की जरा भी मरज़ी नहीं है । यद्यपि दोनों में से कोई तुम्हारे साथ ऐसा आचरण करते तो है ही नहीं तथा वैसी भावना भी नहीं है । फिर भी तुम्हारा मन तुम्हारे पति में चेतनभाव से गल जाय, तभी तुम्हारे वैसे विचार भी गल जाँय । पर तुम कुछ भी दबा दबाकर कितना भी रखा करोगी, इससे तो उल्टा अंतर में उसका जोश बढ़ता ही जाएगा । घड़ी की चाबी जैसे-जैसे बल देकर देते जाते हैं, वैसे वैसे उसका जोश बढ़ता है, वैसा इसमें भी है । अतः उसे मेरे को वैसा कराना भी नहीं है । पर वैसा कराये तो उल्टा जीवदशा में ही रहा जाएगा । इसलिए जिसे तारणहार मानते हो, उसमें वैसा सजीव ज्ञानभक्तिपूर्वक का भाव मिले तो ही हमें उसकी चेतनाशक्ति उठा सकती है । इसलिए नामस्मरण करते जाँय, वैसा भाव प्रत्येक आते विचार, आचरण, ध्यान, संबंध, व्यवहार, संसार, जगत और जगत की प्रवृत्ति के साथ हमें सजीव रखना है और ऐसा होगा तभी उबर सकेंगे ।

'गुरु' की चेतना

स्वजन-बहन : आप हमारे घर को स्मरणमंदिर बनाओ ना ?

श्रीमोटा : तुम्हारे यहाँ स्मरणमंदिर प्रभुकृपा से बनाने का दिल था ही, पर तुम दोनों ने मेरे दिल को तोड़कर चूरचूर कर डाला है । पर इससे तुम्हारे प्रति प्रेमभाव कम नहीं हुआ । त्राटक तथा नाक के सिरे पर की दृष्टि ये दो साधन करते-करते खूब प्रेमभाव से हृदय की मस्ती से नामस्मरण किया करना है । हृदय की झंकार अभी 'अंतर' का स्पर्श नहीं कर पाती । इसलिए कृपाकर अब तो बस लग जाओ, मन को अलग कर वैसे वैसे विचारों को दूर कर एकभाव से स्मरण में ही लीन हो जाओ, ऐसा **यह जीव** तुम्हारे लिए सोचा करता है ।

गुरु की चेतनाशक्ति में श्रद्धा, विश्वास और भक्ति रखते हुए उसमें तादात्म्य जागे ऐसे प्रयास तुम्हें करने हैं । मन जब उस के विषय में कुछ भी नकारात्मक रूप से सोचना बंद करे तो जानना कि अब उसकी चेतना काम करने लगी है । तब तक जान लेना कि हमारा जीव-स्वभाव अभी अग्रस्थान पर ही है ।

सबसे अच्छा है नाम लिया करें और स्थूल **मोटा** को नहीं पर चेतन **'मोटा'** को हृदय में रखकर कर्म में उसका भाव उतारते रहना । चेतन **मोटा** जीवन में संलग्न रहा करे

इसके लिए ऐसी सजीव दहकती तमन्ना से स्थूल '**मोटा**' का संग हो तो भी समझ आ ही जाएगी ।'

संग्राम : पत्नी और नौकरी

स्वजन : मोटा, मेरी पत्नी को नौकरी मिली है पर नौकरी करना उसे पसंद नहीं है और फिर कहती है कि **मोटा** कहते हैं, इसलिए नौकरी करती हूँ ।

श्रीमोटा : तुम दोनों भगवान पर भरोसा रखकर उसका स्मरण करोगे । हमें लगना तो है किंतु बकरी के गले के थन हैं, उसकी तरह लगे रहने से कुछ सिद्ध नहीं होनेवाला है । इसलिए उसमें हृदय लगाओ, ऐसी विनती है ।

तुम्हारी पत्नी को खराब लगे तब भी मेरी सलाह यह है कि शरीर चले और उसका मन कहे तो नौकरी पर रहे । यह सलाहभरा है । अलबत्ता, छुट्टी पूरी होने पर वह नौकरी करती होगी तो सगे-संबंधी में भी उसकी कदर होगी । यह ठोस हक़ीक़त है । और मन को आरोग्यप्रद उद्यम मिल जाएगा । बैठे रहने से शरीर अधिक खराब हो जाएगा । ऐसा मेरा मानना है । परन्तु मेरे कहने से ही नौकरी करती हो तो न करे । यदि मेरा कहना सही लगे तो अवश्य नौकरी करे ।

भगवान पर भरोसा रखकर नामस्मरण करे तो उसे भी हृदय में आश्वासन मिलता रहेगा । खाली मन शैतान

का घर होता है । इससे तो कोई निर्दोष प्रवृत्ति में मन लगा रहे तो वह उत्तम है । पलपल स्मरणभावना में तो मन रह सके वैसा नहीं होता ।

फिर इस संसार में हर किसी की कीमत पैसों से ही होती है । पैसों का जोर जहाँ-तहाँ सभी जगह है । कमानेवाला प्यारा लगता है । संसारव्यवहार में भी पैसा मान दिलाता है । मूर्ख और बुद्धू जीव यदि पैसेवाला हो तो देखते हैं कि सभी उसे सलाम करते हैं । हमें उस तरह तो नहीं होना है पर समय बरबाद हो उससे अच्छा तो बालकों के संग जाय, वह उत्तम । शरीर को कुछ अधिक काम करना पड़ेगा, इसमें कोई बाधा नहीं । जो करो पूरा समझकर करो ।

विषयभोग की सापेक्षता

स्वजन-बहन : (पत्र में लिखा था) घरसंसार में वे पति-पत्नी दोनों हैं । पति में विषयवासना जाग्रत हो तो पत्नी से उसका इन्कार या विरोध कैसे किया जा सकता है ? मेरा स्वभाव आग्रही है, ऐसा आपने मुझे बार-बार लिखा है पर इस विषय में मेरी बिलकुल इच्छा न हो तो मुझे क्या करना चाहिए ?

श्रीमोटा : विषयवासना की तृप्ति अर्थात् बालक हो वह वृत्ति । उसमें यदि तुम्हारा कुछ न चलता हो और उसमें तुम्हारी शिकायत हो तो वह तुम्हें खुले दिल से

बतानी चाहिए । मन ही मन में रखकर, ऊपर से एक बात कहना और अंतर में दूसरी बात रखना यह तो द्रोह होगा । प्रभु के मार्ग में कुछ भी बात या किसी भूल को दबाकर हम आगे नहीं चल सकते । दबा रखा कभी तो ऐसा जोर मारेगा कि वह हमें पलट ही डालेगा ।

जिस बात में तुम्हारा न चलता हो, वह कृपाकर खुले दिल से लिखना । बाकी मुझे तो तुम्हारा स्वभाव आग्रही लगा है । सभी आग्रह हमें तो छोड़ देने हैं । पर वह समझ-बूझ के साथ यदि हम चेतन के हों एवं जो कुछ करें चेतन द्वारा ही करते हों तो फिर जो कुछ हो वह चेतन का ही होगा । इसलिए हमें जो कुछ हुआ करे या हुआ करता हो, आता हो या जाता हो वह चेतन का ही है और उसे चेतन को ही सौंपा करें तो फिर उसमें अपनेपन का भाव नहीं रह पाता ।

यदि तुम्हें एक संसारी जीवन जीना हो और बाल-बच्चों के साथ ठाठबाट-खुशी से रहना हो तो हमें तुझे बरबस रौंद-रौंद कर इसमें धकेलना नहीं है । क्योंकि तुम्हारे हृदय का असंतोष वह कोई तुम्हारा नहीं है । वह असंतोष फिर मुझे सालेगा और दुःख देगा, उसकी अवधि किस तरह तुम्हें समझाऊँ ?

जगत-व्यवहार में भी अभेद ही प्रवर्तमान है और आध्यात्मिक अर्थ में भी अभेद ही है । जगत में अच्छा-

बुरा, ऐसी श्रेणी है, वह भी सब अभेदरूप ही है । इसलिए तुम्हारा न चलता हो और यदि वह पूरी तरह योग्यतावाला हो और इससे जीवनविकास को रोकनेवाला न हो तो तुम्हारे पति को भी मैं आदेश करूँ (वह माने तो) । परन्तु हम कुछ भी दबाव के साथ अंदर भरकर रखेंगे तो कुछ सफलता प्राप्त न होगी ।

विषयभोग का उद्देश्य

स्वजन-बहन : (पत्र में लिखकर) बालक की छटपटाहट के साथ विषयभोग करने में दोष है सही ?

श्रीमोटा : विषय की बात में अब तुम्हें समझना है । यदि बालक की भूख हो तो उसके उत्तरदायित्व की पूरी समझ होनी चाहिए । बालक को पालने-पोषने और योग्य शास्त्रीय रूप से संस्कार देने की मनोवृत्ति, काम और होशियारी-उत्साह हो तो वैसी इच्छा होना वह भी कुछ ठीक है । केवल चमड़ी की खुजली के संतोष के लिए गर्भ रह जाय तो वह तुम्हारे या तुम्हारे पति के लिए योग्य नहीं है । तुम्हारे मन में उस बात में लोलुपता हो तो वह कोई पाप नहीं, दोष भी नहीं । वह तो हो ही । यदि तृप्ति मिलती हो तो उससे होनेवाले परिणामों पर भी सोचना होगा ही ।

बालक को पालना यह कोई खेल नहीं । गर्भधारण करने के पहले मन की जो पवित्र और शुद्ध सात्त्विक

भावना की योग्यता न हो तो केवल चमड़ी की खुजलाहट को संतोष देने के लिए जो कुछ थोड़ा सा कर्म हो जाय उसमें मज़ा भी क्या और आनंद भी क्या ? उसमें शरीर को भी आनंद नहीं, यह तो उल्टी बेगार है और प्रसव की वेदना और फिर बालक की जो उचित ढंग से देखभाल, संभाल, ध्यान और संस्कार देने की उचित कुशलता यदि न हो तो बालक होने का विचार करना यह निरा अज्ञानतापूर्ण पागलपन है । बालक बिना—बालक के ख़्याल बिना का—शरीर की खुजली के निमित्त थोड़ी बहुत कामवासना को पोषण देने का इन्द्रियजन्य कर्म होने देना वह तो घोर अज्ञान है । वैसे कर्म में भी पूरीतरह की सावधानी, सजगता, चैतन्यता और भावमयता तथा उस उस कर्म की केन्द्रितता के साथ की चेतनाभरी आत्मस्थिति का सजीव लक्षण तथा उस उस कर्म की परम्परा में से उदित प्रत्यक्ष ज्ञान—यह सब भी रह सकना संभव हो तो उस समय का जो बालक होगा वह तो श्री ज्ञानेश्वर महाराज जैसा या नरसिंह मेहता जैसा होगा । यानी कि अवतारी जैसा वह बालक होगा । वैसा बालक जन्मे तो विषय भोगना भी सार्थक हो जाय । इसे तो पशु भी भोगते हैं । कुछ समय का चूहे-चूहिया जैसा तुच्छ विषय भोगना उसमें **जीव** क्या लोलुपता रखता होगा, वह मुझे समझ में नहीं आता । अतः यह सब आत्मभाव से सोंचे और वहाँ आऊँ तब

दिल खोलकर बात करना ।

खाली चूहे-चूहियाँ का खेल खेलने जैसी बात में मन जो लोलुपता रखता है, वह हमें शोभा देनेवाली बात नहीं है । इसलिए एकमात्र भगवान की ही भक्ति में मन को लगा देने का, समर्पण का सजीव अभ्यास बनाकर उनके चरणकमल में न्योछावर हो जाने का मरजिया निर्धार ही हमें उबार सकता है ।

हमारा 'वर' जैसा वर मिला है, वैसा वर दूसरा कोई हमें मिल नहीं सकता । उसकी योग्यता का भान हमें हृदय की योग्य भावना में पैदा हो ऐसी हृदय में तुम्हारे प्रति अपेक्षा रहती है ।

अभी तुम्हारी भावना **इस जीव** के प्रति भी उत्कट, प्रचंड भक्तिवाली नहीं हो पाई है । शरीर का शरीरभाव ही ध्यान में रहा होने से उसका चेतनभाव तुम्हें स्पर्श नहीं कर सका है । इसलिए तो चेतनभाव का स्पर्श होगा तभी कुछ काम आएगा । बाकी अलौकिक भोग ऐसी एक दशा है, उसमें सारे लक्षण आत्मदशा के ही प्रवर्तित होते हैं । यह सत्य तो जो भक्तियोग की पराकाष्ठा को पहुँचा हो वही समझ और जान सकता है ।

बालकों में संस्कार

स्वजन-बहन : छोटे बालकों को अच्छे संस्कार मिलें, उसके लिए माँ-बाप को क्या करना चाहिए ?

श्रीमोटा : बालक हमारे वातावरण को कितनी शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है, उसकी हमें कल्पना भी नहीं होती । उसकी ग्रहणशक्ति तो इतनी तेजस्वी होती है कि हमारे अंदर सूक्ष्म रूप से चल रहा है, उसकी छाप उन पर पड़े बिना नहीं रहती । उनमें जिसे subconscious state कहते हैं, वह अंत:स्थ चेतनावस्था सजग है । यानी कि हमारी नींद के दौरान भी जो जाग्रत होती है, उसकी बालक में सतत जागृति होती है और यह इतना तो बलवान होता है कि आसपास का सारा केमेरा की तरह रेकर्ड बनाते है, तब रेकर्ड की तरह शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है । इससे हमारे मन का मैल, रागद्वेष, झगड़े, क्लेश और हमारे नीच मन और हृदय के संताप, यह सब उसके हृदय में हमारे उत्तराधिकारी की तरह उसे मिलता रहता है । इस विरासत से हमारे बालकों को उबारना हो तो मातापिता को अधिक उन्नत बनना ही पड़ेगा । जो संस्कार बालकों को बचपन में मिलते हैं, वही उसके हृदय में सूक्ष्म रूप से एकदम ग्रहण हुए होते हैं और किसी न किसी समय ये संस्कार फूट निकलते हैं ।

बालकों को खेलाते हुए 'सावधान'

स्वजन : छोटे पुत्र को खेलाते समय वह अच्छा बने ऐसी मन में इच्छा जागती है ।

श्रीमोटा : अपने पुत्र के विषय में तुम माता-पिता

किसी भी प्रकार की इच्छा मन में न रखें । जिन बालकों पर उनके माता-पिता के ऐसी रागात्मक इच्छाओं के आक्रमण हुए हैं, वे अनेक बार मातापिता चाहते हैं, उससे विपरीत बने हैं । ऐसा परिणाम आया बहुत बार देखने में आया है । इसलिए उन्हें होना होगा वैसे होंगे । हमें मन में उनके विषय में किसी भी प्रकार के विचारों को न आने दें और उन्हें पालते-पोषते समय तो विशेष ही ।

● ● ●

शिक्षिका का व्यवहार

प्रिय बहन, ता. ६-१२-१९५७

अब परिस्थिति बदल गयी है । इसलिए अब हमें स्कूल में सभी के साथ अधिक सद्भाव, सुमेल और प्रेम से व्यवहार कर सभी की चाहना प्राप्त करनी है । अभी तक शिक्षक भाई-बहन सभी अच्छी तरह व्यवहार करते थे, परन्तु अब वैसा शायद न भी हो, तो उससे मन में रंज करने का कोई कारण नहीं । बहुत बात करने का स्वभाव न हो वह उत्तम । हमारे विषय में सभी को अच्छा लगे, ऐसी धारणा के कारण जिसकी बात होती हो, उसकी प्रतिष्ठा कम हो, वैसा हम कभी न बोलें । हो सके जितना निःसंग रह सकें उतना उत्तम ।

● ● ●

हरिःॐ आश्रम में प्रभुभाव

प्रिय बहन, ता. २३-१२-१९५७

तुमने मुझ पर प्रभुकृपा से जो भाव दिखाया और

रखा है, उसका स्मरण भुलाया नहीं जा सकता । चेतना की भावना मनुष्य के दिल में प्रगट हो, ऐसी प्रवृत्ति प्रारंभ कराने की प्रेरणा भगवान की कृपा से दिल में जागी और **उसकी** कृपा से आश्रमों की प्रवृत्ति चली है । अमीरों को तो हरेक का सहारा मिल सकता है, परन्तु मेरे जैसे ग़रीब और अनाथ को तो भगवान का ही सहारा है । आप जैसों की उदारता द्वारा श्रीभगवान मदद करा रहा है, वह उसकी परम कृपा है । आपका शरीर ठीक से अच्छा हो और आपका दिल हो, तब एक बार आप नडियाद आश्रम में कदम रखो तो बहुत कृपा होगी । आपको सारी सुविधाएँ मिलें और सारी अनुकूलताएँ प्राप्त हों ऐसी दिल की तैयारी तो है, परन्तु यहाँ दिल का तो आग्रह नहीं और कभी भी नहीं । आप का स्वागत करने को दिल में पूरी उमंग है । यहाँ जगह की कमी है सही, परन्तु यहाँ आयेंगे तो आपको किसी निराले आनंद का अनुभव होगा ।

● ● ●

नयी अवस्था का धर्म

प्रिय बहन, ता. २०-११-१९५७

अब तुम्हें जीवन में सोचकर व्यवहार करना है । सभी के साथ हमारा सद्‌भाव बढ़े और जिसे हम नापसंद करते हों, उसे हम अपना कर सकें तो ही जीवन की कुछ विशेषता गिनी जाएगी ।

● ● ●

मुक्त की शरीरदशा

प्रिय बहन ता. १३-१-१९५८

मेरा शरीर ज़रा भी ठीक नहीं रहता । किसी का मोल लेना नहीं बनता । अगर मोल लेना करे तो भी ज्ञान की आत्यंतिक कोटि का नहीं गिना जाएगा । यह तो स्वयं सहज रूप से हुआ करे और ऐसा **इस** शरीर में कितना ही आता-जाता रहता है । और **यह** शरीर हलन-चलन करता है, घूमता-फिरता है, यही भगवान की बड़ी कृपा है । अपने शरीर को कृपाकर तुम संभालना ।

● ● ●

व्यवहारकला

प्रिय बहन, ता. २४-१-१९५८

कृपाकर भगवान का अधिक स्मरण करती रहना । हमारा सहारा तो वह भगवान ही है । हमें अब उसी पर जीना है ।

स्कूल में अब सभी के साथ अब बहुत अच्छा रखना और सद्भाव बनाये रखना । अपने सिर पर जो बड़ा आसरा था, वह आसरा अब नहीं है । अभी तक हमारा कोई नाम न लेता था पर अब तो अनेक आपत्तियाँ आएँगी । परन्तु हमें तो प्रेम से निभाना है । इसलिए ध्यान रखना । हमें किसी की नाराज़गी न मोल लेनी पड़े, वैसा व्यवहार करना है ।

परार्थ भोग

प्रिय बहन, ता. ३१-१-१९५८

इस शरीर में दूसरे जीवों के शरीर का दर्द पैदा होता रहता है, इस हक़ीक़त को प्रत्यक्ष नज़रोनज़र देख सकते हैं और अनुभव कर सकें ऐसा है । उसके शरीर की नाड़ी की धड़कनें तथा अभी प्रभाबहन के रक्त का दबाव एवं कमर में हुआ दर्द–वह सब तो प्रत्यक्ष देखा जा सके ऐसा है और कितनी ही बार कितने ही स्वजनों ने प्रत्यक्ष नज़र से उसे देखा भी है ।

जीवन में आध्यात्मिक प्रकार की अमुक उच्च कक्षा तक पहुँचने के पश्चात् ही इसप्रकार का तादात्म्यभाव प्रगट होता है और उस भाव की किसी उच्च कक्षा की श्रेणियों में उससे ऊपर उठ जाने से भी अमुक अमुक **जीवों** के साथ की प्रेमभावना के कारण जो तादात्म्य होता है, वह तादात्म्य कोई सामान्य कोटि का नहीं होता है । वैसे भाव की कक्षा में भोगा हुआ या भोगा जा रहा तादात्म्य वह मात्र शरीर ही भोग रहा होता है , ऐसा कुछ नहीं है । स्थूल, सूक्ष्म और कारण वे तीनों अलग-अलग होने पर भी वे फिर एक साथ जुड़े होते हैं । इससे जैसे वह स्थूल का कुछ भोगता है, तो उसके साथ सूक्ष्म और कारण का भी कुछ तो होता ही है ।

मेरे गुरुमहाराज के आशीर्वाद से मेरे स्वजनों को प्रभुकृपा से बता दिया है कि उसकी स्वजनों के प्रति

विश्वसनीयता अजोड़ और अटूट है । परन्तु स्वजनों की ऐसी विश्वसनीयता प्राप्त करने का सद्भाग्य प्रभुकृपा से अभी तक नहीं मिला, यह निर्विवाद सत्य है । इस पत्र को पढ़कर नंदुभाई को भिजवा देना, क्योंकि यह पत्र सभी को पढ़ने लायक है और दिल के दर्द से लिखा हुआ है ।

आचरण से शोभा

प्रिय बहन, ता. ४-२-१९५८

कभी कभी तुम्हारे शरीर का मुझे अनुभवात्मक भान भी होता है । अहमदाबाद में पेशाब की जाँच करवायी थी, परन्तु उसमें कुछ नहीं निकला । परन्तु किडनी में कुछ होता है, इतनी बात मुझे निश्चित रूप से लगती है । नितंब तो फूला हुआ है और जाँघ के नीचे भी पीड़ा रहती है । यह सारी बातें तुम्हें चिंता करवाने के लिए नहीं लिख रहा हूँ । परन्तु तुम्हारा कोई सच्चा सही रूप से स्वजन है, उसका तुम्हें प्रभुकृपा से सचमुच का संपूर्ण रूप से भान जाग जाय तो उत्तम । किडनी का तो बाहर से दूसरे किसी को कुछ पता न चले, परन्तु रक्त दबाव और फूले नितंब की सच्चाई तो प्रत्यक्ष है । तुमने योग्य गौरवपूर्ण आचरण किया, इससे तुमने मेरी शोभा बढ़ाई है । उसी तरह अब तुम्हारे जीवन में तुम भावना से आचरण करके प्रत्येक मिलनेवाले संबंधी के साथ हृदय का सद्भाव रखते हुए रागद्वेष कम करती जाओ और सबके साथ मात्र चाहने को ही समझें, और किसी के भी अवगुण न देखें तो उसके

सद्‌गुणों की आदरभावना हमारे दिल में हो, ऐसा तुम आचरण करो तो मेरा सिर सदा प्रभुकृपा से ठीक सीधा रह सके । इसलिए इसप्रकार के आचरण द्वारा तुम मुझ पर कृपा करना ।

● ● ●

ठोस व्यवहार दृष्टि

प्रिय बहन, ता. ५-२-१९५८

तुम्हें शरीर से शर्दी, खाँसी और बुख़ार अभी नहीं मिटते तो तुम्हें दवा करवानी चाहिए । दवा करने में तुम लापरवाही करती हो, यह ठीक नहीं होता । शरीर को योग्य ढंग से टिकाने के लिए तुम्हें बहुत बहुत दरकार रखनी ही है । तुम्हारे शरीर की मुझे चिंता रहती है, वह इसलिए कि तुम्हारे शरीर की सेवा फिर कौन कर सकेगा ? इसलिए तुम मुझ पर कृपाकर मेरी प्रीति ध्यान में रखते हुए अपने शरीर का योग्य ढंग से ध्यान रखो, इतनी विनती है ।

● ● ●

कायरता को लानत

प्रिय बहन, ता. ७-२-१९५८

कृपाकर तुम्हें रोना नहीं है । तुम्हारे रोने से हमें खराब लगता है । जीवन मिला है मर्द मनुष्य को । मुझे संग अच्छा लगता है पर मर्द मनुष्य का । जीवन में जो

कोई स्वजन की निरी कायरता और नामर्दपना निहारता हूँ, तब हृदय धिक्कारे बिना नहीं रह पाता. मेरे निकट के अनेक लोग मुझे नहीं समझ पाते हैं । प्रभुकृपा से प्राप्त हुआ स्वजन हर प्रसंग में कायरता बताता है, तब मेरे पास का सिरपाव उसे एक मात्र लानत ही होगी । स्वजन की अनेक प्रकार की नालायक़ी मुझे जो त्रास देती है, वह मेरा दिल ही जानता है । इसलिए तुम्हें वैसी नालायक़ी नहीं करनी है । उसकी सेवा करते हुए तुमने जो कठोर परिश्रम किया है (तुम्हारे शरीर में शक्ति न होने पर भी, रोग से पीड़ित होने पर भी) और उसके शरीर के अवसान के अवसर पर तुमने जो खुमारी दिखलायी है, इससे मेरा सिर गौरव से उन्नत रहता है । **मेरे स्वजन के आचरण से मुझे गौरव हो ऐसा उनका आचरण होना चाहिए ।** तभी मुझे कुछ चैन मिलेगा । इसलिए तुम कृपाकर, मुझ पर दया रखते हुए रोने की बात नहीं करना और अपने शरीर की संभाल रखते हुए दवा करवाना ।

● ● ●

शरीर की देखभाल

प्रिय बहन, ता. ११-२-१९५८

अपने शरीर की संभाल रखते हुए दवा ठीक से करवाना । तुम दवा ठीक से नहीं करवाती और दवा भी ठीक से नहीं लेती हो, यह ठीक नहीं है । मुझे तो दवा

की ताकीद ज़रा भी नहीं लगती, तब भी नियमित दवा लेता हूँ ।

भगवान का स्मरण जितना दिल से किया करोगी उतनी ही तुम्हें सहन करने की शक्ति भी मिलती रहेगी और शान्ति, प्रसन्नता भी मिलते रहेंगे और टिकेंगे । प्रभुकृपा से प्राप्त हुए *'मोटा'* में श्रद्धा, विश्वास प्राणवान बनाए रखना ।

पुनर्जन्म

प्रिय बहन, ता. ८-४-१९५८

हमारे स्वजन के शरीर में जो आत्मा थी, उसके पुनर्जन्म के लिए तुमने जो धारणा रखी थी, उस ठिकाने नहीं हुआ । उसके जैसों के लिए कोई अधिक उपयुक्त स्थान और अधिक पवित्र भूमिकावाला स्थान चाहिए । अभी उसका जन्म नहीं हुआ है ।

मुक्त के स्पर्श का दृष्टान्त

प्रिय बहन, ता. २१-४-१९५८

जींथरी अस्पताल में चूनी तमाकूवाला के शरीर की स्थिति अब सुधार पर है । उसने बहुत हिंमत बतायी । सवा दो घण्टे ऑपरेशन चला और उस दौरान उसने जोर से भगवान का स्मरण किया था । चमड़ी को बेहोश करने की दवा की असर कम होने लगी थी, इसलिए उसे बहुत दर्द हो रहा था, तब भी वह डिगा नहीं और हिंमत रखी ।

उसके डॉक्टर भी उस पर बहुत खुश हुए और आनंद से कहा, **'तेरा गुरु कोई सच्चा है'** ।

'मोटा' में विभुत्व

प्रिय बहन, ता. २९-४-१९५८

तुम्हें इस समय मौन में बैठना है, तब बहुत उत्साह और भक्ति से एकाग्र दिल करके कूद पड़ना है । किसी भी प्रकार की डगमग मन में नहीं रखना और प्रेमभक्ति से भगवान के स्मरण में तल्लीन हो जाना है ।

जो वृत्ति सताये, उस वृत्ति को उस पल ही भगवान को सौंप देना है अथवा जिसे हमने 'मोटा' माना है, उसे हमें देते रहना है । उसे तो पुण्य भी खपेगा और पाप भी खपेगा । भगवान की कृपा से वह तो सब हज़म कर सकें ऐसा है । परन्तु कोई **जीव** की ऐसी देने की सजग शक्ति पैदा नहीं हुई होती है । इसलिए तुम्हें इस समय सचमुच का प्रयोग करना है ।

प्रभुकृपा से **यह जीव** के बहुत से अनुभव हुए हैं और जिनकी जानकारी खुद तुम्हें है । इसलिए अब हमारे दिल मिले बिना अंत नहीं आएगा । कृपाकर अब तो दिल में दिल मिलाने का रखो । तुम्हारा शरीर सदा बीमार रहा और बीमार था । तब भी पति के शरीर की अच्छी तरह सेवा कर सकी हो, उसके पीछे भी **किसी** का बल था, ऐसा मानना और समझना ।

प्रभुकृपा से प्राप्त स्वजनों के पास हमारा दिल होता है और हमारा दिल उसी प्रकार वहाँ पर भी है, वह भगवान ने भी सिद्ध कर डाला है । ऐसा होने पर भी स्वजन के दिल अभी मुड़ते नहीं है । यह कितनी बड़ी उलझन है ?

● ● ●

सदा का साथी

प्रिय बहन, ता. ११-६-१९५८

तुम हमें तेरे दिल में कृपाकर रखने का अगर सजग प्रयत्न प्रेमभक्तिपूर्वक करोगी तो **मोटा** का साथ तुम्हें मिलता प्रत्यक्ष अनुभव कर सकोगी और तुम्हें कभी अकेलापन नहीं लगेगा । उसका विश्वास तुम्हें प्रभुकृपा से दे सकता हूँ ।

अब तो हमें **मोटा** में ही दिल पिरोना है । भगवान का स्मरण किया करना । तुम्हें अकेलापन लगता है, ऐसा तुम लिखती हो, इससे मुझे दुःख होता है । पर तुम हिंमत रखना ।

● ● ●

प्रिय बहन, ता. ४-७-१९५८

जितना जीना है, उतना शांति से, प्रसन्नता से जीएँ उसी में श्रेय है । शरीर भले ही बीमार रहे और हो, पर जिसका मन बीमार उसीका जीवन को रंडापा लगा जानो । तुम अकेली हो ऐसा कभी नहीं मानना । तुम्हारे शरीर की संभाल अब तो तुम्हें ही ठीक से रखनी है ।

प्रिय बहन, ता. २३-७-१९५८

शरीर के दर्द से हमें बेचैनी होती है सही । पर, उस बेचैनी को टिकने दें तो वह हमें डुबा ही देती है । इसलिए ऐसे समय प्रार्थना या नामस्मरण करती रहती हो, यह बहुत अच्छी बात है ।

● ● ●

प्रेम से प्रतिकार

प्रिय बहन, ता. १८-८-१९५८

प्रकृति की ऐसी कृपाशक्ति है कि दुःख या रोग के प्रतिकार हेतु तुम्हें सहनशक्ति भी वही प्रेरित करती है । कोई एक चीख़ लगाता है, कराहता है, बेचैन रहता है, ऊब जाता है और कोई शांति से पड़ा रहता है । इन सभी को उस ढंग से सहन तो करना ही पड़ता है । इसलिए ही मैं कहता हूँ कि जो भोगना पड़े उसे प्रेम से, शांति से और धीरज से भोगा करेंगे तो वही काम आएगा ।

● ● ●

औषध की आवश्यकता

प्रिय बहन, ता. २-९-१९५८

शरीर के विषय में तुम बेपरवाह बनो और ढीलापन रखो, यह ठीक नहीं है । सरकारी अस्पताल के डॉक्टर धक्के खिलाते हों तो पैसे खर्चकर किसी अच्छे जानकार डॉक्टर की दवा करवाओ । तुम वैद्य की दवा लाई हो

तो उसे भी करके देख लो । यदि ठीक हो तो पैसे खर्चकर भी किसी अच्छे डॉक्टर की दवा करवाओ । नडियाद भादो कृष्ण चतुर्थी के दिन तुम आनेवाली हो, यह तो बहुत अच्छी बात है । परन्तु यदि तुम्हारा शरीर ठीक न रहता हो और बारिस हो तो एक दो दिन के लिए दौड़कर मत आना ।

● ● ●

स्मरण का सहारा

प्रिय बहन, ता. ६-१-१९५९

सबसे उत्तम तो भगवान का स्मरण है । वह तुम जितना भावनापूर्वक करोगी और उसे जीवंत रखोगी तो तुम्हें शान्ति और प्रसन्नता अवश्य मिलेगी । दूसरा कुछ चूक जाँय तो कोई हर्ज़ नहीं । परन्तु इसको न चूकें, उसका कृपाकर तुम सजीव-सजग लक्ष रखो ।

● ● ●

प्रिय बहन, ता. ११-१-१९५९

भगवान के स्मरण की भावना अखंड एकसमान सजग दिल में दिल से यदि प्रगट हो तो सभी कुछ होने की संभावना हो जाती है । हमें जो करना है, उसे करने में ही एकसा लगे रहें तो जो होना है, वह होकर ही रहेगा। इसलिए कृपाकर हरिस्मरण में लगी रहो ।

● ● ●

मोटा का प्रेम

प्रिय बहन, ता. ११-१-१९५९

प्रभुकृपा से हम दिल में दिल से परस्पर एकदूसरे के निकट आए और एकदूसरे के सचमुच में दिल के स्वजन बने और ऐसा करके एक दिल हों । यही मेरी तो दिल की अभिलाषा है ।

● ● ●

प्रिय बहन, ता. २१-२-१९५९

स्वजन को तो हम गले लगाये फिरते हैं, परन्तु बकरी के थन की तरह नहीं । तीव्र इच्छा से चाहना तो हमारे दिल का धंधा है । **रंगने का तो हमारे बापदादा का धंधा रहा है । हम रंगने का तो बहुत प्रयत्न करते हैं, पर अभी किसी को दिल में दिल से दिल का रंग नहीं चढ़ पाता ।** परन्तु उसके बिना हमारा अंत नहीं है । प्रभुकृपा से हमारा काम पूरा हुए बिना हमें चैन से नहीं बैठना है ।

● ● ●

हरि पर भरोसा

प्रिय बहन, ता. ३१-१-१९५९

जहाँ कहीं कर्तव्य समझकर जाना पड़े वहाँ जाएँ । हमें, तुम्हें और मुझे संभालनेवाला एक श्रीहरि ही है । उसमें विश्वास बढ़ाओ और प्राणवान रखो ।

● ● ●

स्वजन के स्मरण का उपयोग

प्यारी बहन, ता. ७-२-१९५९

तुम्हारी पुकार कितनी बार दिल में दिल से प्रकट होती है । उस समय मैं तो तुम्हारे दिलभरे स्मरण को प्रार्थनाभाव से यथायोग्य होने श्रीप्रभु के चरणकमल में समर्पण कर देता हूँ । हमारा संबंध तो श्रीप्रभु का दिया है । यही हमें जीवन में पार उतारेगा । हमें उसका बड़ा से बड़ा आसरा, ऊष्मा और सहानुभूति है । अतः उसका स्मरण कर दिल को भरा हुआ रखें ।

● ● ●

स्वयं का उदाहरण

प्रिय बहन, ता. १२-२-१९५९

दिल का भाव और उसका आकर्षण कुछ अनोखा ही होता है । हम तो दिल दिल पुकारते ही रहते हैं । शरीर का तो जैसे तैसे चला ही करता है । मैं भी शरीर की कितनी संभाल रखता हूँ ? इसलिए तुम्हें भी मेरा उदाहरण लेकर संभाल रखने दवा करवानी ही चाहिए ।

जब जब तुम्हारे शरीर को दुःखी होने का सुनता हूँ या तुम्हारे पत्र में ऐसी हक़ीक़त जानता हूँ, तब मुझे अवश्य बेचैनी होती है । परन्तु बेचैनी भी कुछ काम में नहीं आती । जो कुछ भी उपाय करना योग्य हो, वह करो और उससे शरीर की संभाल रखने का हो वही अधिक उत्तम ।

कृपाकर हमारे ख़ातिर तुम अपने शरीर को ठीक रखो तो मेरे जैसे को यहाँ रहते हुए भी कुछ अच्छा लगेगा । इसका अर्थ ऐसा नहीं कि तुम शरीर ठीक नहीं रखती । परन्तु लोलुपता रखे बिना शरीर के रोग की संभाल करें, संभाल लें और ऐसा करके शरीर को सशक्त रखने प्रयत्न करें ।

● ● ●

चेतननिष्ठ में चेतना

प्रिय बहन, ता. १५-७-१९५९

जिस तर्ज़ में गीत बनाना हो उस तर्ज़ को काफ़ी समय तक मन ही मन में गुनगुनाओ और वह तर्ज़ ठीक से दिल में और कंठ में बैठ जाय, तभी उस तर्ज़ में गीत बनाना सरल होता है । प्रारंभ में मुझे इसतरह प्रयत्न करना पड़ता था, इसलिए तुम्हें ऐसा लिखा है ।

ऐसे प्रार्थना काव्य लिखने से जिनमें हमें अपने दिल के भाव को टिकाना है और ऐसा बनाये रखना है, वैसा हमारे दिल का भाव उसके प्रति जागृत रहता है या नहीं उसकी जाँच करते रहना चाहिये । प्रार्थना काव्य लिखते रहें और उसके प्रति हमारे दिल का भाव यदि जाग्रत होता हुआ अनुभव में न आये तो अपना सभी कोरा ही समझना । यह तो समझने की दृष्टि से मार्गदर्शनार्थ लिखा है ।

जो चेतना में निष्ठा प्राप्त आत्मा है, वह अपनी स्थिति उसके साथ संपर्क में आनेवाले **जीव** को प्रभुकृपा से २-४-५ बार बतलाता है । ऐसे कितने ही प्रसंगों की

तुम्हें जानकारी है और बुद्धि से भी उसे नकारा नहीं जा सकता । तुम्हारे पति की और हमारी नाड़ी की धड़कनें तथा ऐसा दूसरा भी बहुत है, जो हमारी स्थिति को सिद्ध करने के लिए संपूर्ण प्रमाणभूत और भरोसेपात्र हैं । परन्तु हमारे दिल अभी पिघले नहीं हैं और मिले नहीं हैं, इसलिए क्या करें ?

● ● ●

प्रिय बहन, ता. १५-७-१९५९

पिछले शुक्रवार की रात कोई बिचारा बुरी तरह से जल गया होगा । उसका तादात्म्यभाव शरीर में प्रगट हुआ और उसके कारण शरीर में ऐसी तो गरमी पैदा हुई की जो गरमी सहन ही न हो पाय । अंदर का मांस-हड्डी-पेशियाँ, ये सभी सूखकर इतनी सारी सिकुड़ती हुई लगती हैं ! और इस सिकुड़न के कारण शरीर में जो दर्द-पीड़ा हुई, वह इतनी अधिक भयंकर वेदना थी कि यदि भगवान की कृपा की शक्ति **इस** शरीर के आधार में काम न करती होती तो जीव टिका नहीं रह सकता । मधुरी और भाई रमाकान्त ने सारी रात शरीर की सेवा की । अंत में सुबह के पौने पाँच बजे रमाकान्त सोया ।

● ● ●

गुरु के अखण्ड स्मरण की पद्धति

प्यारी बहन, ता. ३१-७-५६

स्मरण को जीवन समझकर उसमें अखण्डता प्रगट

करने के लिए दिल में दिल से जिसे सद्गुरु मानें, उसे सतत मन में दृष्टि समक्ष बारम्बार प्रेमभक्तिभाव से प्रगट करने का सजग अभ्यास विकसित करते रहना है । ऐसा करते करते उसमें सजीवारोपण प्रगट हो सकता है ।

● ● ●

'जीव' के कल्याण हेतु

प्रिय बहन, ता. ३-६-१९५९

प्रथम श्रेणी में यात्रा करने का निश्चित किया है, तब भी शरीर को अवश्य थकान लगती है सही । पर, वह अनिवार्य है । जो कर्म अपने सिर पर लिया है, उसके प्रति यदि हम प्रामाणिक, विश्वसनीय न रह सकें तो हम अपने आपको धोखा दे रहे हैं, यह निश्चित है । इसीलिए प्रभुकृपा से मैंने जीवन में शरीर को ऐसा महत्त्व कभी नहीं दिया है । तथापि उसकी कभी अवगणना भी नहीं की ।

अभी कुछ समय से नींद नहीं आती है । कितने सारे दिन हुए और नींद न आने के कारण शरीर भी थोड़ा लड़खड़ाया लगता है । डॉक्टर को भी बतलाया । उनकी दवा की असर भी नहीं होती । प्रभुकृपा से ज्यों-त्यों गाड़ी चलती जा रही है । **उनकी** कृपा से ऐसा काम मिला है कि उसमें मुझे पूरी तरह दिल से मदद कर सके, ऐसे आदमी यदि मिले होते तो राहत बहुत होती । **मुझे मिले आप सभी लोग और स्वजन भावना और संवेदना की**

बात करते हो, परंतु उस भावना-संवेदना का प्रामाणिक एवं वफ़ादारीपूर्वक प्रतिभावात्मक उत्तर हृदय के उत्साह से कोई नहीं दे पाया है । अब तुम्हारी बारी है ।

● ● ●

जन्म-जन्मान्तर का साथ

प्रिय बहन, ता. १७-१०-१९६०

तुम्हारा ता. १५ का पत्र आज मिला है । तुम्हें बुख़ार उतर गया है । अब कमर से पिंडी तक दर्द है, वह भगवान की कृपा से कम होगा सही । किसी प्रकार की चिंता न हो वह तो है ही, पर मैं पत्थर या लकड़ी नहीं हूँ । कभी प्रभुकृपा से सजीव पड़ा रहता हूँ, यह वास्तविकता भिन्न है । परन्तु इस अवस्था में कोई भाव, ऊष्मा, संवेदना, भावना स्फुरित न होती हो, ऐसा नहीं है । इसलिए तुम्हारे लिए मुझे जो होता है, वह होता है ।

तुम्हें मैंने अपनी कुछ आज की थोड़ी बनाई है ? परन्तु तुम्हें जहाँ तक अभी अकेलापन खलता है, इससे हमें बहुत दुःख होता है । हमारे दिल में किसी के लिए सचमुच में सही भाव दिल से प्रगट हो तो अकेलापन खलेगा ही क्यों ? यह मुझे समझ नहीं आता । खूब आनंद में रहो और स्मरण करती रहो ।

● ● ●

छुट्टी का सदुपयोग

प्रिय बहन, ता. १९-१०-१९६०

तुम्हारे मौन का पत्र मिला ।

हम अकेले हैं ही नहीं, ऐसा भाव तुम्हें जब जागेगा, तब तुम्हें अकेलापन नहीं खलेगा । ऐसा क्षण आता है, तब उसमें से जन्म लेनेवाली भावना का तुम उपयोग करती हो, वह तो उत्तम बात है । वहाँ दोपहर के समय में पढ़ते रहना और साथ ही हरिस्मरण भी करते रहना । इस जगत और संसारव्यवहार में बहुत ही कम **जीव** क्वचित् ही कोई स्वयं प्राप्त छुट्टी का ऐसा सदुपयोग करते होंगे । आनंद स्फुरित करो और आनंदित रहो ।

● ● ●

साकार-निराकार

प्रिय बहन, ता. २१-१-१९६०

बाहर की दुनिया से अंदर के मौन-एकांत की दुनिया बिलकुल अलग है । मेरी मौन-एकांत पद्धति का प्रारंभ सही रूप में तो सायला के हमारे गढ़ में से हुआ है । हमारी बड़ी माँ, हेमंतभाई आदि को सायला के गढ़ में बिठाये और भौंरा का विचार तो उसके बाद में आया ।

हम शरीर को इतना अधिक महत्त्व दे देते हैं और शरीर की उपस्थिति के कारण ही उसका अस्तित्व है, ऐसा माना करते हैं । सचमुच हमारे दिल में गहराई से जो किसी

के विषय भावना उत्पन्न होती है, तब उसका अस्तित्व हमारे दिल में अनुभव होने लगता हैं और उसके प्रति हमारे दिल की भावना के कारण हमें उसके प्रति का अकेलापन फिर सालता नहीं है । शरीर का महत्त्व वैसी भावना पैदा करने के लिए है और वैसी भावना विकसित करने के लिए ही हमारा मनादिकरण आकार ग्रहण कर सके ऐसी शक्तिवाला होने से शरीर का होना आवश्यक है । जब मनादिकरण दिल में दिल से दिल की भावना को पकड़कर उस साकार स्वरूप को पकड़ सके और उसमें यदि एकरूप हो जाय, तद्पश्चात् शरीर का इतना महत्त्व नहीं रहता है । भावना स्वयं ही साकार में खेलती है । अतः वह उसीमें लीन रहा करती है ।

प्रयत्न करते करते और उसी प्रकार के अभ्यास द्वारा इसप्रकार की भावना प्रगट होने की है, यह निश्चित है । इस अवधि में भावना का उठाव जितना हो, उतना प्रयत्न करते करते प्रगट करना और मनोभाव एवं भावना का उपयोग स्मरण में करें ।

● ● ●

मुक्त के मिलन का उद्देश्य

प्रिय बहन, ता. २८-१०-१९६०

तुम्हारी समझ बढ़ती जा रही है और तुम्हारी लिखावट में वह व्यक्त होती जा रही है । उसे पढ़कर मुझे आनंद होता है ।

भगवान की कृपा से हम मिले हैं तो मिलने का उद्देश्य आज या कल फलित होनेवाला ही है । इस विषय में मुझे श्रद्धा है । मनुष्य सचमुच तो अपनी श्रद्धा और विश्वास के द्वारा ही जीवित रहता है । श्रद्धा के बल से मनुष्य टिका रह सकता है । श्रद्धा नया बल उत्पन्न करती है । **श्रद्धा द्वारा ही मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है और भक्ति की नींव ही श्रद्धा है ।**

● ● ●

पढ़ने से लाभ

प्रिय बहन, ५-११-१९६०

तुम्हारी माँ ने तुम्हें पढ़ने दिया, बाकी बचपन में घर के काम में तुम्हें लगा लिया होता तो ? तुम ट्रेनिंग कॉलेज में पढ़ी तो आज प्रभुकृपा से शारीरिक रूप से अपनी विधवा स्थिति में भी तुम स्वतंत्र रूप से कमा सकती हो और आज संसार की स्थिति देखते हुए आर्थिक रूप से जो कोई जितना स्वतंत्र है, उसका मूल्य संसार में बहुत है। आज यदि तुम भगवान की कृपा से कमाती न होती तो तुम्हें पता चलता ।

इसलिए मैं भाई को मितव्यतता करवाकर भी कुछ बचत करवाने के लिए प्रेरित करता था, जिससे विवशता न भोगनी पड़े । उसे जब से नौकरी में वेतन मिलने लगा, तब से उसे मितव्ययता करवाने में भगवान की कृपा से

प्रेरित होते रहे और उसके पीछे का उद्देश्य भी ऐसा ही था और उसी मितव्ययता के कारण भाई को कुछ भोगना नहीं पड़ा है । मेरी अपनी जो समझ है, वह ऐसी है कि मनुष्य को अपनी प्रकृति और स्वभाव जो हो उसी ढंग से उसे आचरण नहीं करना चाहिए । वह स्वभाव से बहुत खर्चीला था, इसलिए उस ढंग से भी मैंने उसे समझाया था ।

शिक्षण से तुम्हारे में आज जो समझ आयी, आज तुम स्वतंत्र रूप से अपना निर्वाह अच्छे ढंग से कर सकती हो । यह सब संसारव्यवहार की रीति से भी आवश्यक था ।

हम सब भगवान की कृपा की बात बोलते हैं सही, परन्तु कृपा का सच्चा महत्त्व अभी हम समझ नहीं पाये । कृपा की वास्तविकता तो जिसके दिल में प्रगट होती है, वह तो स्वयं समर्थ का आधार अनुभव कर सकता हैं, यह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । इसलिए प्रभुकृपा से तुम नित्य नित्य आनंद में ही रहना । आनंद के बिना हमारा कोई दूसरा जीवन नहीं है ।

दुःख को गाया नहीं जाता

प्रिय बहन, ता. ६-२-१९६१

दर्द को हो सके उतना तुम प्रेम से सहन कर लेती हो और नित्य का जो हो गया है, उसको क्या गाना ? यह तुम्हारी बहुत सच्ची बात है । मनुष्य को दर्द तो होता ही है । वह मूलतः एक तो दर्द हो, उस दर्द की फिर वह

चिंता करे और फिर उसका रोना रोये । इसतरह दर्द तिगुना होता है, इसलिए तुम्हारी बात मुझे बहुत अच्छी लगी ।

भगवान का स्मरण विशेष से विशेष तुम करती रहो तो ही उसका आश्रय हमारे दिल में बना रहेगा ।

इस संसार के जीव में जिसके जीवन में भगवान का सचमुच दिल में भरोसा हो, वह किसी भी प्रकार के दर्द से या उपाधि से कभी भी टूटेगा नहीं । दिल का दिल में दिल से उत्पन्न हुआ भगवान के प्रति भरोसा हमें समर्थ बनाता है और उसका इतना बड़ा तो सहारा जीवन में होता है कि जिससे हम अकेले हैं, ऐसा कभी लगता ही नहीं ।

● ● ●

हानिकारक इच्छा

प्रिय बहन, ता. ११-२-१९६१

तुम्हारा शरीर ठीक नहीं ऐसे समाचार जब जब मिलते हैं, तब फिर मन को दु:ख होता है । तुम दवा करो तो बहुत अच्छा ।

शरीर जल्दी छूटने की इच्छा करने से वह जल्दी नहीं छूट जाता । वैसी इच्छा हानि ही करती है । ऐसे दर्द से तुम टूट नहीं जाती हो और स्कूल भी जाती हो, यह जानकर तुम्हारी सहनशक्ति के लिए दिल में खुश होता हूँ । ऐसे समय में किसी की याद कैसी और कितनी तुम्हें होती होगी उसे ठीक से समझ सकता हूँ ।

भगवान की कृपा से तुम दुःख झेलती हो और उसकी ग़लत अंतर्वेदना नहीं निकालती । इसलिए तुम्हारे विषय में मुझे अशांति नहीं होती है । **दुःख को प्रेम से सहन करने से दुःख हमें दबा नहीं पाता ।**

● ● ●

वृत्ति का उपयोग

प्रिय बहन, ता. २१-२-१९६१

तुम मुझे कुछ एक बार बहुत ही याद आती हो । स्मृति यह अलग-अलग जीवन के साथ जोड़नेवाली एक जीवन की शक्ति है । ऐसी अपनेआप आनेवाली स्मृति शक्ति को ज्ञानभक्तिभाव से जो उपयोग में लाता है, उसे ऐसी स्मृति मोह में नहीं डाल पाती अथवा तो दूसरे किसी प्रकार की वृत्ति जन्म नहीं दे पाती ।

वृत्ति का ज्ञानभक्तिभावपूर्वक सदुपयोग करने की कला यह मेरे गुरुमहाराज का एक विशेष और अनोखा लक्षण है । जो कुछ है, वह सब प्रभु से भरा है, और उसकी शक्ति बिना दूसरा कुछ है भी नहीं । वृत्ति भी उसकी शक्ति ही है । इसलिए अनेक स्वजनों के साथ स्मृति-वृत्ति के भाव से प्रभुकृपा से जुड़े होने के कारण तब तब उस स्मृति के भाव को भगवान के चरणकमल में समर्पण करते रहने से उस उसका योग्य होने के लिए हृदय में हृदय से प्रार्थना चलती रहती है ।

शरीर के लिए पैसा

प्रिय बहन, ता. ७-८-१९६१

तुम्हें अभी संधिवायु का दर्द कम नहीं होता, इस वास्तविकता की जानकारी हुई । किसी न किसी तरह प्रार्थना में, भजन में, पढ़ने में चित्त लगाना । तुम्हारा लिखना सही है कि ख़ुदगरज़ मन जब साथीपन का अनुभव मन से करेगा, तब उसका दर्द उसे सता नहीं सकेगा ।

भगवान करे और ऐसा हो तो बहुत खुश होऊँगा । भगवान की कृपा से हमारे पास दो पैसे हैं तो तुम कृपाकर तुम्हारे शरीर की सेवा के लिए अधिक पैसे देकर एक बहन रखकर उसकी सेवा अवश्य लेना तो मुझे चैन मिलेगा ।

अपने शरीर के लिए तुम विशेष खर्च नहीं करती हो यह मुझे ठीक नहीं लगता । पैसे देने से आदमी तो मिल सकता है । तुम्हारे शरीर की सेवा करने, दूसरा कोई आ नहीं सकता । मैं भी ऐसा ही हो गया हूँ कि मैं आकर कुछ भी सेवा नहीं कर सकता । अकेला रहा भी नहीं जा सकता । इसलिए कृपाकर मेरे सुख के ख़ातिर तुम अपने शरीर की सेवा किसी के पास से लेना शुरू करोगी तो मुझे खुशी होगी ।

● ● ●

शरीर की मर्यादा

प्रिय बहन, ता. १२-१०-१९६१

हम जानते हैं कि हमारे शरीर को कुछ न कुछ नया तो होनेवाला है । और उस में से संपूर्ण मुक्ति मिले ऐसा तो होनेवाला नहीं है । ऐसा भी वर्तमान संयोगों से लगता है और वह सब प्रेम से सहन करने की शक्ति हमें हमारे हृदय में उत्पन्न हुई भावना से मिलनेवाली है, यह बात निश्चित है तो वैसी भावना उत्पन्न करने, बनाये रखने एवं जीवन्त रखने के लिए स्मरण, प्रार्थना, भजन और सहपठन यही हमारा एक सच्चा आधार है । इसलिए इसप्रकार के प्रयत्न में सजग रहना प्रार्थना है ।

जन्मजन्मान्तर के साथी

प्रिय बहन, ता. १३-१०-१९६१

हमारा संबंध कितने ही वर्षों का है और उस संबंध से हृदय का आकर्षण प्रगट हो और उस आकर्षण में प्राण पैदा हो तो उससे भी जीवस्वभाव से कभी तोबा पोकार उठते हैं । ऐसे अवसर पर कुछ राहत मिल सकती है सही । संपूर्ण रुप से **जीव** प्रकृति की पकड़ में से इस जन्म में तो नहीं छूट सकते पर हम सभी अगले जन्मों में भी साथ रहें ऐसी मेरे हृदय की दृढ़ इच्छा है ।

● ● ●

मन की लाक्षणिकता

प्रिय बहन, ता. ५-७-१९६१

अपने मन को समझाने के लिए तुमने जो कविता लिखी है, उसे पढ़ा । मौन के समय तुम्हारे शरीर में जो जो पीड़ाएँ हुईं, वे सारी कठिनाई का सामना तुमने कैसे किया, उसे तुमने कविता में ढाल दिया ।

पैरों के अंदर तलवे पर एक बार मुझे इतनी सारी जलन हुई थी कि जिसके दाग अभी भी रह गये हैं । भाई रमाकान्त ने उस पीड़ा को देखा था सही । तुम लिखती हो, वैसी जलन कभी कभी उस भाग में मुझे भी होती है । इन्द्रिय का कुछ हिस्सा बिलकुल काला हो गया अभी भी है । वैसी जलन बहुत दिनों तक चलती है । बहुत से दर्द हो जाय इससे या तो मन बिलकुल निरुत्साहित होकर पंगु और अशक्त हो जाय अथवा तो सहन कर करके ढीठ हो जाता है । जबकि ऐसा होना कठिन है ।

मनुष्य का मन वचन सुन-सुनकर ढीढ बन जाता है सही, परन्तु दर्द के आक्रमण से वह ढीठ नहीं बनता पर दर्द की वेदना में यदि भगवान का स्मरण किया करें तो दुःख सहने की शक्ति आती जाती है और बढ़ती है, ऐसा अनेकों का अनुभव है ।

फिर यदि कोई जीवन्त ऐसा शरीरवाले **आत्मा** में हमारी सचमुच भक्ति उत्पन्न हो जाय तो ऐसी श्रद्धा हमारा

आंतरिक बल बन जाता है । ऐसी श्रद्धा के बल पर हमें चाहे कितने ही दुःख क्यों न हों सहन करने को तत्पर हो जाते हैं । 'जैसी श्रद्धा वैसा जीवन !' श्रद्धा की ही मूल में हम सब में कमी होती है । परन्तु उसकी भी मुझे कुछ आपत्ति नहीं है । जो जो स्वजन मुझे मिले हैं, उन्हें मैं तो चाहता आया हूँ ।

विवेक-व्यवहार

विधवा का व्यवहार

स्वजन-बहन : कोई व्यक्ति हमारे प्रति सद्भाव तथा भावना रखता हो तो हम अपनी सारी ही बातें उसे कहें यह ग़लत किया, कहलाएगा ? ऐसे व्यक्तिओं को हम अनेक बार व्यक्त तो करते हैं पर शर्मिंदगी उठाने की बारी आती है । इसलिए वाणी का उपयोग करने में विवेक कैसा रखें ?

श्रीमोटा : कोई **जीव** यदि बहुत सद्भाववाला हो और भावनायुक्त लगे, तब भी वह हर वक्त वैसा रह भी न सके । **जीव** कब कट्टर बैरभाव में आ जाय यह नहीं कह सकते । इसलिए कितना ही कहने में सार है और कितना न कहने में । अतः हर जगह विवेक का उपयोग करें । **क्या कहा जाय और क्या न कहा जाय और कितना कहा जाय, उसकी भी एक कला है ।** कुछ भी कोई भी यदि वह झेंपकर बहुत दुःखी हो रहा हो और

सामने कभी वह सींग मारता हो वैसी दशा स्वयं होकर न उद्‌भव हो यह हमारे लिए ठीक है । हम किसी जीव को शर्मिंदा न करें । शर्मिंदगी हम अपने सिर लें और भविष्य में शर्मिंदगी लेने के कारण में पड़ने से निश्चित रुप से अटक जाँय, उसीमें जीवन की शोभा है । अन्याय का भोग हम भले बना करें और वह सचमुच की वास्तविकता हो, तब भी अन्याय को ज़रा भी स्पर्श न होने दें तो मन में त्रास, ऊब, संताप कभी नहीं होगा । संसार के व्यवहार में कहाँ खुल्ले न होना, इसका भी विवेक बनाये रखें । दिल में जो सत्य है, उसे जहाँ-तहाँ कह देना भी समझदारी नहीं है । उसे कहने पर असत्य होता है ऐसा तुम्हें लगेगा, पर ऐसा मानना योग्य नहीं है । **जो कुछ सत्य है, उसे हृदय में रखकर इसतरह कहें कि जिससे सत्य का भंग भी न हो और असत्य का उच्चारण भी न हो ।** ऐसे कोमल, नाजुक प्रसंग जीवन में आते हैं, उस समय बहुत सावधानी रखनी है । हमारे किसी ऐसे स्पष्ट उच्चारण से जीवन की सद्‌भावना से कोई अलग न पड़ जाय, उसका हमें ज्ञान रखना होगा । हमें किसी को भी भड़काना नहीं है । हमें तो जिस-तिसमें से समझने में सार है । **सामनेवाले का दोष जानने पर भी हम ज्ञानयुक्त अनजान में हैं, ऐसा व्यवहार करना, वह किसी सामान्य जीव का काम नहीं है ।**

इस जीव ने बहुत ग़रीबी में जीवन बिताया होने से

अनेक जगह अन्याय का भोग उसे होना पड़ा था । अभी भी उसे होना पड़ता है । बचपन के अनेक प्रसंग स्मृति में हैं, परन्तु उस समय अन्याय का सामना करने और अन्याय के सामने न देखने की ज्ञानयुक्त दशा उत्पन्न न हो पायी थी, परन्तु ग़रज़ होने से वहाँ वहाँ अन्याय को पी जाने का निश्चय किया था, ऐसा तो नहीं कह सकता, क्योंकि पी जाने में अन्याय का दंश चुभता रहता है पर उस समय भी ऐसी समझ तो जागी थी और अपनी स्थिति के अंतर का तीव्र ख़्याल नहीं रहता था । 'उस दशा में वैसे जीव वैसा ही व्यवहार करें, उसमें उनका क्या दोष गिनें' ? ज्यों त्यों करके मन में इस तरह समन्वयात्मक समाधान प्राप्त करता था । सदा सभी के साथ अत्यधिक आनंद से, सुमेलभाव से आचरण करता था । सभी का काम कर लेता था । इसलिए सभी के प्रेम का पात्र बन जाता था । किसी भी **जीव** को **यह जीव** नापसंद हो वैसा स्मरण स्मृतिपटल में अभी याद नहीं आ रहा है ।

विधवा की स्थिति

स्वजन-बहन : मोटा ! हमारे समाज में विधवा की स्थिति बहुत विचित्र होती है । घर में भी लोग उसे दबाव में ही रखते हैं । बाहर का वर्ग भी उसकी ऐसी स्थिति का गैरलाभ उठाता है, तो क्या ऐसे अन्याय को मूक रहकर सहन कर लेना चाहिए ?

श्रीमोटा : आज समाज में स्त्रियों का विशेषकर विधवाओं का स्थान दबावयुक्त जैसा कुछ है । परन्तु इससे उनका महत्त्व संसार में कम हो गया ऐसा कुछ नहीं है । किसी भी **जीव** में सदा के लिए सद्‌भावना बनी रहे ऐसा कदापि नहीं होता । वह परिस्थिति का गैरलाभ कब उठाएँगे, यह कहा नहीं जा सकता । इसलिए व्यवहार में किसी के सिकंजे में न आ पड़ें अथवा तो हम पर कोई सवार न हो सके या हुकम न चलाए इसतरह चेतकर चलने में और व्यवहार करने में सार है ।

हम पर कोई दबाव और उसे यदि ज्ञानपूर्वक स्वीकार कर लें तो वह एक अलग बात है । फिर भी हमारी स्थिति का यदि कोई गैरलाभ उठाये तो वह सहन न हो ऐसी बात है । कोई भी **जीव** किसी का गैरलाभ उठाये तो उसमें सामनेवाला ही **जीव** मात्र दोषी है, ऐसा नहीं होता । हम में भी उसके प्रति आंतरिक सहकार की भूमिका पड़ी होती ही है । यह सत्य समझने जैसा है । अतः **जीव** प्रकार की भूमिका के निवारण में ही समझदारी है ।

बाकी तुम्हारी समझ और विवेकशक्ति के लिए धीरे-धीरे भरोसा होता जा रहा है कि तुम कहीं भी किसी जगह गड़बड़ नहीं करोगी । तुम्हारी समझ के लिए विश्वास होता जा रहा है । पर भले मानुष ! चेतकर चलने में सार है, यह अभी भी कहता हूँ ।

भटके हुए को प्रेम

स्वजन : मोटा ! सामाजिक व्यवहार विषयक एक प्रश्न जग रहा है । कोई युवक या युवती स्वच्छंदता के वेग में भान भूलकर 'भोग' भोग लेते हैं । ऐसी स्थिति में इन लोगों के प्रति व्यक्ति के रूप में हमारा व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होता है । पर एक सामाजिक दृष्टि में इस प्रसंग की टीका की जाती है ।

श्रीमोटा : समाज की प्रथा से भिन्न रूप से चलनेवाले **जीव** समाज का प्रेम और सहानुभूति खो बैठते हैं । स्वयं बिलकुल अकेले पड़ जाते हैं । ऐसे **जीवों** के प्रति भी हमारा धर्म तो हृदय की प्रेमपूर्वक की भावना से पूरी उदारता बताकर उनके साथ समभाव रखना है । हमें ऐसे **जीवों** के अधिक उपयोग में आ सकें और ऐसे प्रसंग पर जरूर पड़े तब उत्साह के साथ स्वागत करें । कोई बहन या भाई यौवन के जोश में और स्वच्छंदता के अपार तरंगो में और इस युग की अनेक बलिहारिओं में से एक प्रकार की मनप्राणादि को गुदगुदी उत्पन्न करे ऐसी बलिहारी में जो **जीव** पड़े हों या पड़ गये हों, उन्हें धिक्कारना या अवगणना करना हमारा धर्म नहीं है । मानो कि किसी **जीव** की भूल हो गई या उससे दोष हुआ तो आज लगभग सभी ही एकदम वैसे ही **जीव** पर टूट पड़ते हैं । उसके साथ के संबंध भी समूल काट डालते हैं । हमारे समाज

का ऐसा पारावार अज्ञान और संकुचितता है । धर्म की भावना यदि अंतर में प्रगट हो तो उससे हृदय की उदारता और विशालता अधिक विकसित होगी । ज्ञानभक्तिपूर्वक धर्म का सेवन करनेवाले **जीव** तो पूरे ब्रह्मांड को बाँहों में लेने के लिए प्रयत्न करते हैं, तो हम किसी को तिरस्कृत क्यों करे ? भूले हुए **जीव** पर तो अत्यधिक प्रेमभाव रखना चाहिए ।

स्वजन : तो फिर उसके प्रति विरोधी अभिगम क्यों पैदा होता है ? तिरस्कार, घृणा जैसे अभिगम क्यों जागते हैं ? हमारे धर्म की संस्कृति अंतमें तिरस्कार-अवगणना सिखाती है ? ऐसे व्यक्तिओं के प्रति लोग ऐसा कहते हैं कि 'जो करे सो भोगे' यह क्या उचित है ?

श्रीमोटा : ये जीव आज के संक्रान्तिकाल में इसतरह टकरा जाय, ऐसा अनेक जगह बनता है और अभी भी बनेगा । समाज की दृढ़ निष्प्राण बन चुकी परम्परा को तोड़ने के लिए ऐसे प्रसंग तो हमारी आँखें खोलने के लिए हैं । समाज की चेतनाहीन प्रणाली को फिर जाग्रत करने के लिए यह तो हथोड़ा है । इसके द्वारा समाज के प्राण यदि चेतनाशील नहीं हुए तो प्रकृति दूसरे अधिक उग्र उपाय भी लेगी । ऐसे प्रसंग तो हमें चेतावनी देने और जगाने के लिए हैं ।

हमारे धर्म की संस्कृति अभी एकदम मृतप्राय नहीं

हुई है । उस संस्कृति का हृदय और उसका बीज अभी भी जीवित है । जिस समाज में महान आत्माएँ, महान भक्त, महान चित्रकार, महान कवि, महान वैज्ञानिक और महान पराक्रमी जीवात्माएँ पैदा होती हैं, उस समाज के धर्म की संस्कृति अभी भी जीवित रही है और उसका वह प्रत्यक्ष जीवन्त प्रमाण है, इसे निश्चित समझें । इसलिए कभी तो हमारा समाज जागेगा और दुबारा उठ बैठेगा । ऐसा संपूर्ण भरोसा प्रभुकृपा से है । समाज में ऐसे जो उत्पाती प्रसंग बनते हैं, वे समाज को अपनी सही स्थिति में लाने के लिए हैं । इसलिए उसका ज्ञान समाज को आज नहीं तो कल अवश्य होनेवाला है ।

समाज अथवा **जीवों** के प्रति धिक्कार या अवगणना करके वह अपने सत्त्व को ही नष्ट करता हैं, इसका उसे ज्ञान नहीं होता है और उस **जीव** को समाज द्वारा ऐसी अवगणना या तिरस्कार के परिणाम से उसके दिल को कैसे भयंकर आघात लगाते होंगे तथा उसे कितना दुःख होता होगा उसकी किसे पड़ी है ?

यह तो कोई सद्भावी **जीव** समझे तो समझे । हमारे लोग तो यही कहेंगे कि 'करे सो भोगे', पर ऐसे कथन में निरा अज्ञान दिखता है । भूकंप हो, अकाल पड़े, आग लगे ऐसी स्थिति में हम सहानुभूति रखते हुए उन उन स्थानों के जीवों को मददरूप होना हमारा धर्म समझते हैं ।

वहाँ हम ऐसा नहीं कहते कि, 'वे तो अपने किये हुए को भोग रहे हैं, उसमें हमें क्या ?' स्वच्छंद और भूल से टकरा गये **जीव** की उल्टे अधिक देखभाल और संभाल रखनी पड़ती है । ऐसे **जीवों** के प्रति तो विशेष भाव और ध्यान रखना चाहिए । श्रीभगवान ईशु खोये हुए भेड़ की सबसे पहले संभाल लेने को सदा प्रयत्न करने को कहते थे । संसार व्यवहार में भी जो कुछ खो गया होता है, उसके प्रति हम अधिक चित्त लगाते हैं और ध्यान देते हैं तो यह तो भटक गया मनुष्य है; परन्तु उस और ध्यान देने की किसी में भावना नहीं जागती । यह कितने शोक की बात है ।

स्वजन-बहन : मोटा ! अब तो इनकी उम्र भी प्रौढ़ होती जा रही है पर स्वभाव तो वैसा का वैसा ही है, वैसे ही सख़्त हैं । चीखते-चिल्लाते रहते हैं । दो कौड़ी का कर डालते हैं । हम दोनों आपके पास आते हैं, तब तक सब अच्छा लगता है, फिर तो जैसे थे वैसे । मुझे तो उनके साथ कैसा व्यवहार करना उसकी इस उम्र में भी उलझन होती है । फिर कामकाज करने में भी विवेकहीन कर्म करते हैं । इस उम्र में भला कोई साहस करता होगा ? लोग भी कहते हैं, 'चाचा ! आप ठीक नहीं करते' आप ही कहें **मोटा** ! कि इन्हें किस तरह रोकें ?

श्रीमोटा : भगवान के पंथ में जो चला, उसे ऐसे ऐसे प्रसंगों में वे रख देते हैं कि जिससे उसकी प्रभु के

प्रति भावना दृढ़ होकर साकार हो जाय । कहीं पर भी साहस, हिंमत से कूदे बिना कुछ भी नहीं प्राप्त किया जा सकता । **जीवन में साहस की और वह भी ज्ञानपूर्वक साहस की बहुत आवश्यकता रहती है ।** इससे पूज्य चाचा के हृदय की भावनागत प्रेरणा से उनके साहस में सहानुभूति करते रहना । जगत के व्यावहारिक आदमिओं में तो जो सफल हुआ, उसे समझदार मानेंगे और असफल हुआ उसकी निंदा भी करेंगे । जो कोई सफल हो जाय तो उसकी होशियारी, बुद्धि, साहस, हिंमत की प्रशंसा जगत करेगा । हमें तो वह सफल हो या न हो, परन्तु उन्हें जो साहस करने का मन हुआ है, उसमें अपने हृदय का साथ होना चाहिए । उनका आत्मविश्वास और श्रद्धा काम के प्रति बढ़े, ऐसा उल्लास, आनंद और प्रेरणा यदि हम उन्हें दे सकें तो ही हम सच्चे अर्थ में उनकी सहचरी हैं । उनकी सारी स्थितियों में हम शक्ति, आनंद, प्रेम आह्लाद, भाव रूप में बन सकें तो हमारा जीवन धन्य-कृतार्थ हो सकेगा ।

हम जगत के प्रति भले ही अवगणना न करें पर जगत के रूप में तो उसमें दृष्टि, वृत्ति और अभिगम रख सकते ही नहीं । हमारा तो वह **शिव** है और हम उसकी **पार्वती** हैं । **शिव** को तांडव करना हो तो वे भले करें । परन्तु उसकी शक्ति मात्र एक पार्वती ही धारण कर सकती है । दूसरे किसी का कोई काम नहीं । उनकी धारणा में

सजीवारोपण अंकुरित हो, घर आए और सारी मानसिक थकान उतर जाय, उसके मन की सारी माथापच्ची अदृश्य हो जाय और सुबह जाते समय-जैसे नाव को चलाने के लिए चारों ओर से पाल में हवा भर भरकर फड़फड़ हुआ करे, ऐसी उनकी स्थिति बनाने की हमारे हृदय के भाव का कर्म है । यानी कि वह हमारे हाथ में है ।

बहनें सचमुच ही मातृशक्ति रूप हैं । हमारे कोई भी काम करने की शक्ति-प्राणचेतना बहनों में है । ऐसी शक्ति की धारणा रूप में उसे उड़ने देना । भावना तो ऐसे संजोगों से जीवंत बननेवाली है । जो हृदय की भावना को जीवित करने के लिए प्रसंग का जो ज्ञानभक्तिपूर्वक उपयोग करता है, उस प्रसंग के हार्द को अवश्य पाता है । जो कोई भगवान की शरण में ज्ञानभक्तिपूर्वक गया, उसे वे कभी छोड़ नहीं सकते । उसके जीवन की भावना दृढ़ करने उसीप्रकार के अनेक प्रसंग उसके जीवन में खड़े हुए बिना नहीं रहेंगे । मात्र उन प्रसंगों में हृदय के—जीवन के भगवत् उद्देश्य को सिद्ध करने हेतु हृदय की यदि भावना बनी रहेगी तो समझ लें जीवन कृतार्थ हो जाएगा । उसके मार्ग में जाने के लिए क्या कम साहस की आवश्यकता है ? और ऐसा साहस यों ही थोड़े आनेवाला है ! ज्ञानभक्तिपूर्वक ऐसे साहस किया करने से ही जीवन में उसका भाव साकार रूप लेगा ।

संसार के माप से, हिसाब से, समझ से हमें चलना तो है ही नहीं । जगत भी प्रभुरूप है, इससे उसकी अवगणना भी नहीं की जा सकती । परन्तु अपने जीवन को प्रभुरूप में साकार भाव से अनुभव करना हो तो उस संसारी भाव से जीने से कभी भी नहीं हो पाएगा । पूज्य चाचा बिलकुल विवेकहीन कर्म करें ऐसे तो नहीं हैं । उन्हें अवश्य उस काम का अभ्यास है । पर जगत तो जहाँ कुछ साहस है, त्याग है, बलिदान और समर्पण है, वहाँ हिचकता रहेगा ही, यह तो इसप्रकार का उसका स्वभाव है । कुछ भी यों ही प्राप्त नहीं होता ।

स्वजन-बहन : कभी ऐसी भी स्थिति आकर खड़ी हो जाती है कि जीवन में से श्रद्धा छूट जाती है । आपके आशीर्वाद मिला करें, ऐसी हमारी विनती है । जीवन में बिलकुल विपरीत स्थितियाँ खड़ी हो जाती हैं, तब घबरा जाते हैं ।

श्रीमोटा : माँ का हृदय कभी श्रद्धारहित हो सकता है ? माँ और बहनों के हृदय तो सदा श्रद्धा-विश्वास से प्राणवान रहते हैं । माँ का हृदय जब सूख जाएगा, उस दिन हम निष्प्राण हो गये समझ लेना । माँ ही हमारी तो पतितपावनी गंगामैया है । उसका जीवन-दूध वही हमारा जीवन-चेतन-प्राण-अमृत है । **माँ की निराशा यानी घर के भाव का सर्वसत्यानाश ।** तुम ऐसी कैसे हो सकती हो,

यह समझ नहीं आता । भावना का प्रदेश कभी नहीं मिट सकता । हमारी प्रकृति द्वारा भले ही वह ढंक जाय; पर वह कभी सूखा हुआ जाना नहीं है । यदि ऐसा दिखता है तो उस झरने को अखंड बहता हुआ, रोकनेवाले भी हम ही हैं, दूसरा कोई कारण है नहीं । हमारी माताओं के साहस, हिंमत और प्रेरणा के बल पर हमें तो आकाश के भी उस पार उड़ना है । प्रजा के रुप में हम एकदम पराधीन हैं, हमारे पंख कट चुके हैं, वहाँ मुक्त होने के लिए **माँ** ही हमें खप्पर में होमने की शक्ति दे सकती है। ऐसी **माँ** की तुम स्वयं भावमूर्ति हो ।

तुम्हारे पास भावना है । उसे जीवन के साधक को घटित होनेवाले प्रसंगों से जीवन हेतु प्राण को बढ़ाने का ही एकमात्र ध्यान जीवित रखना होता है । जीवन में मिलते कठोर आघातों और उन्हें लगाने का कारण भी हमारा मन ही है । **जगत में दूसरा कुछ भी नहीं । हम ही जहाँ तहाँ विस्तृत हैं । जीवन में 'दूसरों' को मानने से ही सारी पीड़ा खड़ी होती है । जीवन में एक हम और दूसरा कोई हो तो वह हमारा रंगीला नटवर है । आघात लगानेवाला भी वही है और जीवन में प्रेरणा देनेवाला भी वही है । या तो वह नहीं तो हम, उसके बिना दूसरा संभव ही नहीं हो सकता ।**

आशीर्वाद देने की शक्ति तो उस रंगीले की है, मेरी

तो आशीर्वाद माँगने या लेने की है । मेरी तो मात्र तुमसे लड़लड़कर एक ही प्रार्थना है कि उन्हें छोड़ना नहीं । उनकी प्रार्थना में लगे ही रहना । वह बहरा नहीं है । वे सबकुछ सुनते हैं । यह कुछ कवि लोगों की खाली-खाली कल्पनाएँ नहीं हैं । सत्य हक़ीक़त हैं । पर उस प्रार्थना में ही जीवन लगातार बीते, उस प्रार्थना के भाव में रसभीगे चिंतन में ही सभी काम हुआ करें, इतनी और ऐसी कृपा करना । जो जो जीवन में प्राप्त हुए हैं, उनके जीवन में रस, उत्साह, आनंद, साहस, हिंमत, सहानुभूति आदि बढ़ा करे, ऐसे मीठे-मीठे प्रेरणात्मक रूप से सदा जीते रहें ।

मेरी माँ को मेरी शादी करवाने की कामना जागी थी । कौन-सी माँ को ऐसी कामना नहीं होती ? मेरी माँ जानती थी कि इस लड़के के रंगढंग अलग हैं । घर पर तो सोता ही नहीं । स्मशान में सोने के लिए जाता है, इसे वह प्रत्यक्ष देखती थी, तब भी वह मुझे ब्याहना चाहती थी । एक तरफ संसार खड़ा हो रहा था । जिस माँ ने उसके पैदा किये को पालने के लिए दो-दो मण अनाज पीसने-कूटने की मेहनत की हो, ऐसी माँ के जीवन की इच्छा को लात मारकर उसके जीवन की उस आशा को चूर्ण कर देने का मन नहीं होता था । विवाह करने की लालसा तो थी नहीं । उसे बहुत समझाकर देखा, पर वह तो दृढ़ थी । प्रभु के जीवनपथ पर चलना तो निश्चित हो चुका था । इसलिए

'जिस कर्म के अंतर में, आगे या पीछे, **इस जीव** की कोई संसारी इच्छा नहीं थी और तब भी वह हो रहा है तो भले ही; प्रभु सब तरफ़ से उस ओर की भावना को, उत्कट इच्छा को तो मरने देगा ही नहीं । ऐसी श्रद्धा-आत्मविश्वास उसकी कृपा से उग चुके थे और जीवन में जो आया है, आ चुका है, उसका तिरस्कार या अवगणना भी नहीं हो सकती । मात्र जिस उद्देश्य से वह आये, उस उद्देश्य के प्रेरणाबल को जीवनविकास की प्राणचेतनशक्ति में फलीभूत करने हेतु प्रभु बल देते ही रहनेवाले हैं, ऐसी श्रद्धा जिसके हृदय में जागी है, ऐसा **जीव** तो सदा सर्वदा निर्भय रह सकता है । किसी भी प्रसंग के उद्देश्य को वैसा **जीव** जीवन के ध्येय के उद्देश्य में मोड़ देने या फलीभूत करने का सामर्थ्य उस प्यारे भगवान की कृपा से प्राप्त कर सकता है । **इसलिए साधक के जीवन में जो आ पड़ा है, वह नकार नहीं सकता है । किसी से भी भाग नहीं पाता ।**' बंदा तो वरयात्रा पर चढ़ा और विवाह-मंडप (चौरी) में लगभग पौने घण्टे तक शरीर की सुध बिना की दशा में था । प्रभु की कृपा बलिहारी न्यारी तो यह हुई कि वह बहन-साहब आये बिना चार-छः महीने में ही स्वधाम पहुँच गई और आयी होती तो मेरा भगवान तो जीवित था; वह कहीं मर नहीं गया था । जीवनध्येय की प्रवृत्ति को फटका लगे ऐसी प्रवृत्ति में भी कभी वह प्यारा

हमें रख देता है, जिससे वह अपने प्रति हमारे प्रेम, श्रद्धा, विश्वास और भक्ति की परीक्षा कर सके । जहाँ सर्व प्रकार की सरलता रहती है, वहाँ जिगर का अमी या जिगर का सत्त्व या तत्त्व उसे हिलनापन कुछ नहीं रहता । मनुष्य का सच्चा जोश तो वह विरोधी या टकराव के प्रसंगों में बनते हैं, तब परखने में आता है । इसी तरह भक्त की प्राण-प्रतिष्ठा जीवन में पैदा करने के लिए प्रभु कृपा कर ऐसे जो प्रसंग देते हैं, यह तो उसका महान उपकार हैं । परन्तु ऐसे प्रसंगों में जागृत रहें और उस उद्देश्य के ज्ञान में उसी तरह से फलीभूत करने का काम भी हमारा ही है, यह निश्चित जानना, मानना और अनुभव करना ।

स्वजन-बहन : हमें स्त्री शरीर मिला है, इससे अनेक मर्यादाएँ आ गई हैं । स्त्री का अवतार ही दुःख भोगने को मिला हो, ऐसा लगता है ।

श्रीमोटा : शरीर के स्थूल रूप को महत्त्व नहीं देना है, परन्तु शरीर द्वारा उत्तम प्रकार की भावना को विकसित कर सकें ऐसा है और वह साधन रुप है । ऐसे ज्ञान की चेतना रखकर श्रीभगवान की भावना को संसारव्यवहार के सकल कर्म में हमें कार्यान्वित करनी है । जीवन में अवसर मिलने का कारण और उसका उद्देश्य अलग प्रकार का है, यह यदि मन से सच्चे रूप में समझ सकें तो ही उसका लाभ उस रीति से उठा सकते हैं । शरीर के लिए यह सब

नहीं है, ऐसा अनुभव करते हुए यदि ज्ञानपूर्वक हो तो शरीर सार्थकता उससे घटती नहीं है । परन्तु शरीर का उचित उपयोग होने का उसी से ज्ञान मिलता है । गुण का आधार मन की किस भूमिका पर वह रहा होता है, उस पर है । जीवन में तुम्हें ऐसी तपस्या करने का मौक़ा मिला, वह भी जीवन का एक सद्‌भाग्य है ।

हमारा स्त्री के रूप में अवतार जीवात्मा को सच्ची शरणागति विकसित करने के लिए मिला भगवान का अमूल्य मौक़ा है । जाने अनजाने स्त्री को उस स्थिति में रहना ही पड़ता है, परन्तु हमें तो अनजाने में वैसा नहीं रहना है । हमारे जीवन के विकासार्थ ज्ञानभक्तिभाव से जीवन की यह स्थिति हमने स्वीकार की है । इस युग में सभी को अधिकार का दावा करते सुनते हैं । परन्तु आजकल कोई भी **जीव** धर्मपालन का दावा करता हो या रखता हो ऐसी जानकारी नहीं है । **जीवन के धर्मपालन में अपनेआप अधिकार समा जाते हैं ।**

बलात्कार हुआ तो भी क्या ?

स्वजन-बहन : मोटा ! स्त्रियों का जीवन बहुत लाचारी भरा होता हैं । मुझे अनेकबार ऐसा भय लगता है कि बलात्कार हो तो स्त्री की कैसी करुण स्थिति हो ?

श्रीमोटा : हम अकेले हों, तब और उस समय ऐसी आवाजों से हर किसी स्त्री को डर लगेगा वह समझ में

आये, ऐसा है । पर तुम सामान्य स्त्री नहीं और सामान्य स्त्री हमें रहना भी नहीं है । डर किसका ? जाति का ? वह डर भी क्यों ? मानो कि दो-तीन लोग मज़बूत व्यक्ति हमें घेर लें और मानो कि जबर्दस्ती बलात्कार करें तो भी क्या हो गया ? जोर जबरदस्ती से हमारे गहने या पर्स ले जायँ तो क्या करते हैं ? उसकी जैसे चिंता नहीं करते, वैसे ही देह की चिंता नहीं करनी है । देह पर जबरदस्ती हो उससे क्या हो गया ? देह क्या विलुप्त हो गया ? छूत लग गया ? जीवन बेकार हो गया ? ऐसी सारी तरंगे रुढ़िवादी हैं । ऐसे संजोगों में हम संघर्ष करेंगे, तुरन्त उसके हवाले तो नहीं हो जायँगे, सामना करते करते विवश स्थिति में परवश होना पड़े तो भले ही ऐसा हो जाय । **जोरजुल्म से जो हो और जिसमें हमारा साथ न हो उसके संस्कार नहीं पड़ेंगे । उसका हम पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा । मन से अपवित्र हो गये ऐसा नहीं मानना ।**

मैं तो कहता हूँ कि मन से भी किसी के साथ स्वेच्छा से ग़लत व्यवहार हो गया हो, उस समय मन की वैसी दशा हुई हो और वैसा हो गया या हुआ करे और बाद में भूल का पता चले और अटक जाँय तो इसमें भी कुछ नहीं बिगड़ा । देह इससे कोई छूत या भ्रष्ट नहीं हो जाती । मेरे विचार से तो यह देह जैसे पहले था वैसा ही है और रहेगा । इस विचारधारा को समझना और डर

निकाल देना । डर रखने से उल्टा वह सामने आता है । न हो वहाँ से आये, वह भी सच और मन जिसका जैसा डर रखे वह भी हो आये, यह भी इतना ही सच है । इसलिए बिलकुल निडर बनकर रहो । स्त्री वर्ग को - देह को इतना अधिक प्राधान्य देने से उल्टा वे डरपोक बनी हैं । 'समाज क्या सोचेगा ?' इससे डरना नहीं है । हम समाज के लिए नहीं जीते, स्वयं के लिए जीते हैं । (स्त्री) जाति का - देह का ज़रा भी डर नहीं रखना चाहिए । आत्महत्या करने का विचार भी ठीक नहीं, ऐसा करने की आवश्यकता ही नहीं हैं ।

किसी प्रकार की चिंता या डर न रखें । मर्द बनें । कुछ नहीं होनेवाला । और हो तो भी **उस** की कृपा समझकर जिसके ऊपर हमारा नियंत्रण न हो, हमारे हाथ की बात न हो, उसमें हमारा दोष नहीं है ।

ऐक्य - अभेद

अभेद रूप

स्वजन : मोटा ! संसार में सभी अभेद रूप किस तरह हैं ?

श्रीमोटा : संसार-व्यवहार में अज्ञान की कक्षा में भी अभेद रूप है । इसलिए जो कुछ देखने में, जानने में, अनुभव में और भुगतने में मिलता है, उसका मूल बीज-भूमिका हमारे अपने ही कर्म द्वारा हमारे में ही होती है ।

इससे ही वह सब अपना स्वयं का ही है । इसीतरह ज्ञानदशा में भी है ।

बुद्धि कितना भी कहे पर उसके नाम में अनेक गुनी महिमा रही है । **जीव** के उद्धार का एकमात्र यही रामबाण उपाय है, वह मेरे मन में ठोस सत्य रूप है । तुम्हें भी बुद्धि, मन को इसतरह जमा जमाकर समझाने का प्रयत्न करते रहना है ।

जो जो वासना या विषय के विचार–वृत्ति उत्पन्न हो उससे अलग होते रहें - उसमें शामिल न हो और उस सभी को समर्पण करते रहें । सब कुछ प्रति पल ज्ञानभक्तियोगभाव से समर्पण होता रहे, तभी **जीव**कक्षा में से उच्चत्तर भूमिका में जाया जा सकता है ।

मुक्तात्मा के दर्शन

स्वजन-बहन : मोटा ! इस संसार में तो पार बिना की कठिनाइयाँ आया ही करती हैं । ऐसा लगता है कि ये सारे चक्र कभी नहीं रुकेंगे । इस बार मैं मौन में बैठनेवाली हूँ । प्रभु ! मेरी दृष्टि बदलें और जीवन आनंदमय हो ऐसी वृत्तियाँ खिलें ऐसी प्रार्थना करती हूँ ।

श्रीमोटा : दुनिया तो हिंमतवालों की है । कायर को कोई भी दबा देता है, इसलिए हमें साहस, हिंमत विकसित करते हुए जीवस्वभाव के कभी वश होना ही नहीं है ।

मैंने तो तुम्हें प्रत्यक्ष देखने को सोचा, पर तुम्हारी

मात्र पीठ ही दिखा करती । मुझे तो ऐसी आदत है कि जिसे भी भूख जागे उन सभी को देख लिया भी करता हूँ । यह बात भी तुम्हें बतलाई है । ऐसे समय में उस **जीव** की जैसी भूमिका होती है, वह सभी दृष्टि में आ जाती है । भावपूर्वक हृदय की भक्ति प्रगट हो, तभी मेरा तो काम होता है ।

अब जब तुम मौन में प्यारे को खुश करने ही बैठ रही हो तो तुम्हें पर्याप्त स-रस (रसवाला) प्रयास हिंमत-साहस से, भक्ति से करना है । बस, झुकाने का ही दिल किया करना । **सारे संसार को भूलकर संसारमात्र श्रीहरि की ही व्यक्त लीला, कला है, ऐसा दर्शन हो तो ही संसार के आनंद का सुख कोई निराला है ।** ऐसी बेला ही बाद में प्रारब्ध संजोग के अनुसार उस उस **जीव** के साथ सब हरि की धारणा दृढ़ ज्ञानभाव के साथ रह करके भोगने का बनता है । फिर भी वहाँ वहाँ भी श्रीहरि की प्रकृति माया में भी उसीकी चेतना अलग-अलग रूपों में कैसे खिलती है, उसे अनुभव करने में भी कोई निराला ही आनंद रस पैदा होता है ।

प्रभुभाव में रुख लेना

स्वजन-बहन : मोटा ! मेरा मन भगवान के नाम का स्मरण करते करते प्रभुभाव में कब मुड़ेगा ?

श्रीमोटा : जीवस्वभाव की जो जो वृत्तियाँ उत्पन्न

हों, उनके साथ यदि सम्मिलित न हों तो तटस्थता या साक्षीपन रहा करेगा तथा जो कुछ भी अच्छा या बुरा होता जाय; फिर वह विचार हो, वृत्ति हो, संवेदना, भावना, संबंध, व्यवहार या दूसरा जो कुछ भी हो, वह सब उत्पन्न होते प्रत्येक पल के साथ ही ज्ञानभक्तियोगभाव के साथ समर्पित होते रहना चाहिए । अंत में श्वासोच्छ्वास भी समर्पित होता जाय और इसतरह प्रत्येक पल जो **जीव** खाली होता जाय, उसका मन प्रभुभाव में लौटेगा, अवश्य आएगा ।

अपने पति की सादर भक्ति करती हो, वह तो मुझे बहुत ही अच्छा लगता है । **कोई भी हमारे लिए कुछ करे तो उसका हजार गुना गुण मानने का जो जीव कर सकता हो, वह जीव भक्तिमार्ग में प्रवेश कर सकता है, यह निश्चित मानें । कोई हमारी कद्र करता है कि नहीं यह देखने का काम हमारा नहीं है; मात्र हमारे हिस्से में आये धर्म को हम प्रेम-भक्ति से, हृदय से अदा करते रहें उसी में कल्याण है ।** ऐसा मानकर हमें अपना जो कुछ भी कार्य हो करें । उसमें मस्ती, आनंद, अनुभव करें, दूसरा कुछ उत्पन्न हो उस समय उसे सहारा न दें ।

मौन में उपस्थित मोटा

स्वजन-बहन : मोटा ! मेरे मौन के दौरान आप मेरे पास ही रहें ।

श्रीमोटा : अभी तुम्हें मस्तीभरी एकाग्रता नहीं आयी

है । इससे मन का केन्द्रीकरण हृदय में स्थिर हुआ नहीं लग रहा है । मुझे दिल में ऐसा रहा करता है कि तुम्हें कोई ऐसा अनुभव हो कि जिससे तुम्हें तेरे 'मोटा' में श्रद्धा, विश्वास उत्पन्न हो ।

इसलिए हृदय की प्रेमभावना जाग्रत करते करते **मोटा** के हृदय में भाव लगाती रहना । सबसे पहला अनुष्ठान भाई हेमंतभाई का आश्रम में कोई न जानता था, इसतरह से हुआ था । अंतिम विधि के दिनों में मुझे देहरादून गुरुकुल में वनुबहन रहती थीं । उन्हें आश्रम में ले आने के लिए जाना पड़ा था, उस समय हेमन्तभाई को कहा था कि 'रोज़ की तरह तुम सोते रहना और तुम्हें मैं स्वयं हूँ ऐसा लगेगा ।' और सचमुच ही उन्हें ऐसा लगा था । यह सत्य तुम स्वयं उन्हें पूछ सकती हो । तुम्हारे विषय में भी वैसा हो तो ही मुझे संतोष होगा; यह जान लेना ।

स्वजन-बहन : मोटा ! हम भगवान का नाम लेते हों वह किसी को अच्छा न लगे तो ?

श्रीमोटा : जप तो कुछ भी करते-करते भी हो सकता है । इसलिए तुम काम करते हुए भी जप बोलती रहो । वह किसी को अच्छा न लगे, तब भी हमें तो अपने में ही मस्त रहा करना है अगर बन सके तो कहीं भी आपत्ति नहीं आएगी । तुम्हें अपने वातावरण में से दूसरे अलग प्रकार के वातावरण में रहकर मन की शांति,

धीरज, सहिष्णुता, प्रसन्नता तथा सानुकूल रहते हुए रहा जा सकता है, ऐसी शिक्षा की तुम्हें विशेष आवश्यकता है ।

हमारे सुख-दुःख

स्वजन-बहन : मोटा ! मेरे मन में ऐसा प्रश्न उठता है कि स्त्री-पुरुष के संबंध का निर्माण क्यों हुआ होगा ? मैं जप करने का व्रत लूँ तो कैसा ? पर क्या करूँ ? मेरा शरीर-मन अच्छे नहीं रहते । मुझे ऐसा दुःखभरा जीवन क्यों मिला होगा ?

श्रीमोटा : प्रत्येक के शरीर में **जीव** है, उसमें पुरुष और प्रकृति दोनों रहे हैं । पुरुष-प्रकृति कोई अलग-अलग नहीं हैं । वे दोनों साथ में ही हम में ही रहते हैं । दोनों का मेल होने पर ही शरीर, मन, चित्त, प्राण, मति और अहं के कार्य हो पाते हैं । वे एक दूसरे में रहकर ही सभी कुछ किया करते हैं; प्रत्येक परस्पर के साथ बिना कुछ नहीं कर सकते । साथ होने पर ही शरीर टिका रहता है । केवल प्रकृति भी कुछ नहीं कर सकती और अकेला पुरुष भी कुछ नहीं कर सकता । ऐसी शरीर की लीला है । इसे देखकर हमें भी स्त्री-पुरुष को उसी तरह व्यवहार करना है । पुरुष-प्रकृति का युग्म तो शरीर में उपस्थित है ही ।

व्रत लेने का हो तभी नाम ले पाएँगे । व्रत तो निश्चय बल को दृढ़ करने तथा सजीव रखने के लिए उत्तम साधन है ।

दुःख का रोना तो कायर **जीव** रोता है । दुःख कुछ भी नहीं है । जो कुछ दुःख है, वह तो हमारे ही कर्मों हम में ही उगे हुए हैं । इससे तो हमें उल्टा चेत जाना चाहिए कि हमारे दुःख के कारण हम किसी को असुविधामें तो नहीं डाल रहे हैं ? सब कोई संग खोजते हैं या करते हैं, सुखी होने के लिए, आनंद प्राप्त करने के लिए, स्वयं के कार्य में विक्षेप न पड़े, उसमें कठिनाई खड़ी न हो उसके लिए सभी साथ ढूँढ़ते हैं, इससे हमें हमेशा जाँचते रहना है कि हमारे शरीर-मन आदि के दुःख से, कष्ट से, रोग से, जिसका संग हमने प्राप्त किया है, उसे किसी तरह विघ्नरूप, कठिनाई रूप अथवा अवरोधरूप तो नहीं हो रहे न ? ऐसा सोचना हमारा धर्म है । दुःख कैसे कम हो, उसका विचार न करें, उसके लिए जो दवा, साधन हो, उसे शक्ति अनुसार करें और बाकी तो उसे सहन करते रहें - उसे सहन करते हुए भगवान की प्रसादी समझकर, उसे तपस्या मानकर भगवत् चेतना स्वयं में पैदा करने ज्ञानभक्तिभावपूर्वक करें वही **जीव** तर जाता है । तेरे पास मेरी तो ऐसी अपेक्षा रहती है ।

स्वजन-बहन : मोटा ! दूसरों को अच्छा लगे वही हम किया करें तो हम अच्छे किस तरह हो पाएँगे ?

श्रीमोटा : हम में अनेक प्रकार की रुचियाँ होती हैं और अनेक प्रकार की अरुचियाँ भी होती हैं । जो पसंद

हो, वह रुचता है और जो नापसंद हो, वह हमें नहीं रुचता है । हमें पसंद हो वैसे ही दूसरा व्यवहार करें ऐसी आदत प्रत्येक **जीव** को पड़ी होती है । इसलिए हम ऐसा व्यवहार रखें कि जिससे हम पसंद-नापसंद इन दोनों दशाओं से पर दशा में रहने का हमें अभ्यास हो जाय । जो पसंद हो उससे एकदम खुश न हो जाया करें और जो नापसंद होता हो, वहाँ समझ बूझकर खुश रहा करना है । स्वयं की रीति के अनुसार ही दूसरे व्यवहार करें, ऐसा प्रत्येक **जीव** चाहता होता है, पर **जिसे शरणागति विकसित करनी है, उसे तो दूसरों की मरज़ी अनुसार ही चलने का प्राणवान अभ्यास करना है ।**

तुम्हारे दिल में तुम्हें जो न रुचता हो, उसे करने में मुँह एरंडी का तेल पिया जैसा होता है । उसे देखकर मुझे खराब लगता था । फिर तुम्हारे अंतर में अभी जीवन के रहस्य-महत्त्व एवं उसके आदर्शरूप विषयक पर्याप्त समझ उसके चैतन्य रूप में नहीं आ पाई है तो उस विषय में इस अवधि में विचार करना आवश्यक है ।

अंतर में ही लक्ष रखकर **मोटा** के हृदय में नज़र-लक्ष, चित्त, प्राण, मति, अहं को स्थिर करके उसमें लगन लगाओगी तो चेतना का अनुभव हुए बिना नहीं रह सकेगा ।

प्रभु-स्मरण के साथ सजगता

स्वजन : मोटा ! आप भगवान का नाम जपने को

कहते हो, पर उन क्षणों में जाग्रत और सावधान रहने को भी कहते हो । अब भगवान का नाम लेते हुए किसकी जागृति और कैसे कैसे प्रकार की सजगता रखनी है ?

श्रीमोटा : ध्येय को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए ऐसा जो **जीव** सतत सोचा करता है, वही **जीव** हानि के प्रसंग आने पर सावधानीपूर्वक और जागृतिपूर्वक रह सकता है, हानि को पार कर सकता है । जो कर्म जिस भूमिका से करे वैसी भूमिका के भाव में ही वह कर्म फलित होता है । इसलिए हमें तो उन्मत्त, मस्त भाव से, एकाग्ररूप से, केन्द्रितता से हृदय में लक्ष रखकर और **हरि:ॐ** की चेतनात्मक धारणा रखकर हर पल सब कुछ ज्ञानभक्तिपूर्वक उसे समर्पित करते हुए भगवान का स्मरण किया करना है ।

ऐसा स्मरण ही हमारी सच्ची शक्ति बन सकता है । ऐसा स्मरण ही हमें अपने स्वरूप का भान करा सकता है । प्रत्येक वृत्ति, प्रत्येक व्यवहार, प्रत्येक संबंध, प्रत्येक परिस्थिति सब कुछ जो जो हुआ करे, वह ज्ञानभक्तिपूर्वक उसी पल ही उसे स्मरण में रखकर जागृतिपूर्वक उसे समर्पित होते जाँय तो **जीव** आज ही सज्ज हो जाएगा । इसलिए अभी तो हम वैसा किया करें और वैसा करने में ही हमारा जो कुछ सर्वस्व हो उसे खपा डालें । ऐसे यज्ञ का फल तो मिलनेवाला ही है । यह बात निश्चित है । इसलिए जो कुछ भी संस्कार स्फुरित हो रहे हों, उनमें मन पिरोये बिना उठे

संस्कार ऊपर से हमारे कर्म के पाश को जानकर, वैसे संस्कार के बहाव में बह जाँय तो फिर से दुबारा अधिक से अधिक **जीव**दशा में फँसते जाएँगे । ऐसी सजगता रखते हुए उससे अलग होने और प्रार्थना करते हुए भगवान को सौंपकर जागृतिपूर्वक का अभ्यास **जीव** को तार सकता है, यह निश्चित जानना ।

उग्र साधना किये बिना कोई **जीव** तैर नहीं पाया है । गुरु भी आश्वासन हैं । वह तो एकदम अशक्त और पंगु है । साधक की भूमिका का योग्य आधार मिले बिना साधक की उसमें ज्ञानभक्तिपूर्वक की तमन्ना प्रगट हुए बिना गुरु चाहे तो भी उसमें कुछ भी चेतन नहीं ला सकता । गुरु की वैसी सात्त्विक इच्छा साधक के चित्त में उस प्रकार के संस्कार के बीज डालती है ।

गुरुमंत्र

स्वजन : गुरुमंत्र लेने से जीवन की उन्नति होती है सही ?

श्रीमोटा : केवल गुरुमंत्र लेने से कुछ नहीं होता । जिसे लेना हो, उसे भले ही लिया करें । यह भी एक प्रकार की खाली अज्ञानतापूर्वक की भ्रमणा है । संसार तो भेड़ों के प्रवाह की तरह बहता होता है । तब भी तुम्हें गुरुमंत्र लेना हो तो उसमें मना नहीं है । **जब तक जीवन का मूल प्रवाह न बदल जाय, तब तक लिये हुए हजारों**

मंत्र बेकार हैं । आशा, तृष्णा, मोह, लोभ, क्रोध, काम, मद, अहंकार, कामना, वासना, रागद्वेष आदि सभी को दूर करें या मंद करने का जहाँ तक आतुरतापूर्वक अंकुरण न हो, ऐसी तैयारी जो जीव चाहकर भी नहीं कर सकता ऐसे जीव को साक्षात् भगवान भी ऊँचाई पर ले जाने में समर्थ नहीं हो सकते ।

स्वजन : हम सब आपके पास आते हैं, बातें करते हैं, तब भी हम में आप बतलाते हैं, ऐसी प्रभुस्मरण की तमन्ना नहीं जागती है । इससे आपको निराशा नहीं होती ?

श्रीमोटा : इस जीव को कुछ भी किसी भी विषय में निराशा है ही नहीं । मुझे किसके साथ और किसके सामने निराशा होगी ? जहाँ तुम स्वयं ही मेरे हो, मेरे अंशरूप ही हो, चेतनास्वरूप हो, इसलिए कभी भी किसी के विषय में निराशा नहीं होनेवाली । इतना याद रखें कि टकराते-भटकते समझकर अथवा अत्यन्त कठिनाई से जो-जो **जीव इस जीव** को जाने-अनजाने जुड़े हैं या अभी भी जुड़ेंगे, उन सभी की कैसी भी वृत्ति प्रभुकृपा से **इस जीव** के साथ होगी; तब भी उस-उस जीव श्रीभगवान के पथ में आये बिना नहीं रह सकेगा, यह निश्चित जानें ।

सच्चा आश्रम

स्वजन : तो फिर इसके लिए आप एक आश्रम स्थापित कीजिए न ? हम आपकी पूजाकर कृतार्थ हो सकें ।

(यह बात हरि:ॐ आश्रम स्थापित होने से पूर्व की है ।)

श्रीमोटा : भला मेरा आश्रम कैसा ? तुम सभी ही चाहो तो जीवंत आश्रम बन सकते हो । जो कोई **जीव** हृदयस्थ का हृदय से बन जाय, तो किसलिए किससे जुड़ा है, उसका उसे सच्चा ज्ञान हो जाय तो फिर अपनी मानसिक भूमिका जरूर ऊँची ला सकता है । यदि वह सचमुच आकाशभूमिका का हो जाय तो उसके द्वारा प्रकाश फैलाने का प्रभु-निर्मित कार्य कितना अधिक हो सकता है ? कितना कितना अधिक क्रियान्वित होने की संभावनाएँ हैं और भरी पड़ी हैं ? श्रीप्रभुकृपा से जो स्वजन ऐसी भूमिकावाले बन पाते हैं, वही मेरे मन से तो सही आश्रम हैं ।

सभी के पास ऐसी शक्ति है । इससे अपने पास जो कोई आया करे, जिस-जिसका संबंध हो, उन्हें ऊँची समझ में लाने का नम्रता धारण कर करके करें, उन्हें धर्मभावना में रुचि लेने का और संसारी रागद्वेष और ईर्ष्या के झगड़े टालने विषयक समझाने का किया करें, भगवान के नामस्मरण से उसकी भक्ति में मन पिरोया करें, जो जो कुछ हुआ करे, वह सभी उस प्यारे के लिए ही और उसे ही जो जो कुछ भी होता हो, उसे प्रेमभक्तिज्ञानभाव से समर्पित होता रहे तो उसके जैसा दूसरा कोई उत्तम आश्रम नहीं हो सकता ।

मुझे आश्रम बनाना हो तो कोई देर नहीं है । अब मुझे श्रीप्रभुकृपा से पैसों की तो चिंता ही नहीं है । पैसों की तो आवश्यकता पड़ने पर वह प्रिय दिया ही करता है । यह तो नित्य का अनुभव है, किन्तु मुझे रुढ़िगत आश्रम नहीं चाहिए । जहाँ से भगवान की चेतनाशक्ति, भावना जैसे बिजली के मूल कारखाने से जहाँ तहाँ सभी जगह बिजली प्रसारित होती है, वैसे ही उसका अपने आप प्रसार होता जाय और ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव में आता जाय ऐसी अंतर में सहज भावना पैदा हो, तब वैसा करना योग्य है । इसकी ऐसी प्रेरणा अभी तक नहीं मिल पाई है । जितने प्रभुप्रसादी रूप में प्राप्त हैं, उनका जीवन भगवदीय होता अनुभव किया जा सके, तभी आश्रम तो उसकी कृपा से शोभित हो ।

इस जीव को यों ही केवल पुजवाना नहीं है; उसमें तो जीवन की मृत्यु है । **मुझे तो तुम्हारे सभी में का सब कुछ खाना है । श्रीप्रभुकृपा से इस जीव का वैश्वानर जो कुछ भी पचाने को तत्पर है, पर उसे मानेगा कौन और समझेगा कौन ?**

दिल का दिल में रखकर अथवा तो सिर पर भार लादकर कोई पर्वत की चोटी पर चढ़ पाया हो, जाना नहीं है । अपना तो सब कुछ श्रीबांके बिहारीलाल के चरणकमल में सर्वस्व प्रेमभक्तिभाव से रखकर पूरी तरह खाली होते रहना है । सर्वभाव के साथ प्रेमभक्ति से याहोम (बलिदान

हेतु आत्मत्याग) कर झोंक देना है । यदि ऐसा सचमुच हो तो ही प्रिय हमारा सब सुननेवाला हो जाएगा । यह तो मेरे मन की जीवंत वास्तविकता है ।

मेरे मन से कोई भी संत या उच्चात्मा का आश्रम **इस जीव** से अलग नहीं है । सर्वत्र सब कुछ एकरूप ही है । कौन किसको अलग कर सकता है ? सब जगह ही मेरा प्यारा गरजना करता रहता है, हँसता है, खेलता है, नाचता है, कूदता है और लीला किया करता है । उसके प्रेम के भाव को लोग मायाजाल मानते हैं, पर स्वंय ही जहाँ मायाजाल में पड़े होते हैं; वह तो कोई देख नहीं सकता, वहाँ इसप्रकार के लोग प्रभु के दिव्य, भव्य और रम्य प्रेम को किस तरह जान पहचान सकते हैं ?

रूपान्तर की गूढ़ कला

स्वजन : अपने विषय में जब आप कुछ कहते हैं, वह कितनी ही बार हमें समझ में नहीं आता । घर जाने पर आपके विचार आते हैं । ऐसा लगता है, '**मोटा**' को हम क्यों समझ नहीं पाते ?

श्रीमोटा : स्वयं की अपेक्षा से जो ठीक नहीं लगता या समझ में नहीं आता, वह **अन्य** की अपेक्षा शायद समझ आये, संभव होता है । सभी जगह जहाँ-तहाँ उस प्यारे की प्रेरणा की सत्ता प्रवर्तित है । परन्तु तुम या कोई जीवनविकास के प्रति मेरा कहा अभी योग्य भाव में और

योग्य ढंग से नहीं कर सके हो, वैसा दिल भी पल्लवित नहीं हुआ है और **इस जीव** को योग्य रूप से समझ भी नहीं पाते हो और ऊपर से मन में कितना कितना सोचकर घूँसे लगाते हो, वह तो एक तुम जानते हो और एक मेरे प्रभु जानते हैं; वह सब तुम्हारा ऐसा सब हमें सहन कर, भोगकर सर्वत्र अभेदभाव ही है, ऐसे अनुभव में श्रीप्रभुकृपा से हमें तो जीना पड़ता है ।

जब तक जीवदशा में हैं, वहाँ तक प्रत्येक जो कुछ भी हमसे बनता है, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकार – इन सब से जो जो होता है, उद्‌भव होता है, वह सभी चित्त में संस्कार रूप में संपूर्ण रूप से अंकित हो जाता है । वह सब दुबारा उसके योग्य समय पर उद्‌भव हुए बिना नहीं रह सकता, ऐसा उसका अटल कानून है । कहीं कुछ स्थान के नीचे छिपकर छटक जाँय ऐसा नहीं है । भूत लगे तो उसे तो कोई निकाल सकता है, परन्तु कोई ऐसे चेतन में प्रगट हुए है ऐसी आत्माएँ किसी के गले जुड़ी हुई हैं, वह तो छूट सके ऐसी नहीं है । किसी भी प्रकार पीछा छुड़ाना चाहे तो उसके वैसे प्रयत्न भी मिथ्या रहनेवाले हैं ।

इससे मेरी तो सभी को अब विनती है कि जो जो स्वजन इस हेतु से मिले हैं, वे सभी संसार की लोलुपता श्रीभगवान के चरणकमल में प्रेमभक्तिभाव से समर्पित

करते रहें । संसार भी उसी श्रीनटवर बांके बिहारीलाल की ही लीला है । उसमें उसकी प्रेमभक्ति के स्वरूप में जीकर जो **जीव** उस तरह जीवन बिताएगा, वह उबर जाएगा, यह निश्चित जानें ।

गुरुमंत्र का उपयोग

स्वजन : आपके साथ बहुत बातें कीं । पर इस संसार के त्रास में से अलग नहीं हुआ जाता । संसार के क्लेश, संताप, कठिनाई आदि तो समझे, पर हमारी वृत्तियाँ भी अपार तूफ़ान मचाती हैं । उसके मूल किसमें होंगे ? जीवन में आत्मा की शांति का अनुभव कब होगा ?

श्रीमोटा : जलन, क्लेश, संताप, उलझन, कठिनाइयाँ, उपाधि, कुढ़न, अशांति तो पूरे संसार में और उसके व्यवहार में रहती ही हैं । उससे अलग होने की शक्ति किसी **जीव** में नहीं है । उसे तो भोगे बिना छुटकारा नहीं । यदि कोई **जीव** अत्यंत कठिनाई से, उबासी से, त्रास से ऐसा संसार भोगेगा, उसे वह सब अनेक गुना जोर से चिपकेगा ही, यह निश्चित जानें । जो भी **जीव** उस उस बेला में प्रभु का भजन करते करते उसे प्रेम-भक्ति-ज्ञानभाव से प्रार्थना कर करके यह सभी प्रत्यक्ष होता त्रास भी कोई दूसरे से नहीं पर स्वयं अपने द्वारा ही वह पैदा हुआ, ऐसा मानकर उसके मूल जो **जीव** स्वयं में ही अनुभवकर उन सभी प्रकार के रागद्वेष के मूल को संपूर्ण

रूप से भस्मीभूत कर, उस वृत्ति का भाव एकमात्र श्रीभगवान में ही लगाने को मनादिकरण से उद्यत रहा करेगा, वैसे ही **जीव** को गुरुमंत्र लिया हुआ उपयोगी होता हैं ।

गुरुमंत्र लिये अनेक जीव देखे हैं । उनके कर्म व्यवहार, संसार आदि भी जैसे का वैसा ही अनुभव करने में आता है । ऐसा लिया गुरुमंत्र बिलकुल बेकार है । यह सभी केवल आश्वासन है । जिस जीव को अपने जीवन को जड़मूल से बदलने की तत्परता हृदय से जागी न हो, ऐसे जीव को गुरुमंत्र बिचारा क्या कर सकता है ?

वृत्ति यह तो शक्ति का स्वरूप है । संसारी जीव की वृत्ति का मूल तो अज्ञान में है, जबकि किसी रम्य, भव्य, दिव्य, उच्च आत्मा की वृत्ति का मूल तो ज्ञान में होता है । इसलिए दोनों की वृत्ति के मूल में–भूमिका में अंतर होने से, दोनों को एक तरह से देखने की, नापने की, अनुभव करने की इच्छा कदाचित् हम रखें ! अज्ञानी, संसारी **जीव** की वृत्ति अधिक बंधनकर्ता और रागद्वेष बढ़ानेवाली होती है, जबकि ज्ञानी **जीवात्मा** की भावना मुक्ति के प्रदेश में खींचनेवाली होती है । अधिक तो क्या कहें ?

मन को कहीं भी किसी प्रकार भटकने न दें । मन की शांति, समता, तटस्थता आदि सात्त्विक भाव टिके रहें ऐसा जीवन में समझ के साथ हम आचरण करें । मस्त होकर रहें । दोनों एक ही **जीव** हो वैसी भावना से प्राणवान

बनें । यही एक तुम दोनों से प्रार्थना है । तुम में पूरी तरह जुड़ना तो है, पर तुम्हारे बीच स्थूल रूप से आकर रहकर नहीं, परन्तु हृदय में हृदय से सच्चा जीवन प्रकट कर और उसी तरह जीकर । वैसी सरल भक्तिभावनावाली भूमिका का वातावरण और ऐसी सरलता **इस जीव** को तुम सभी में प्रवेश देने के लिए ऐसे प्रकार की भूमिका प्रकट करने का काम तुम सभी का है । प्रभु की हम सभी को वैसी ज्ञानपूर्वक की सद्भावना जीवन में है, उसी अनुसार आचरण करने को प्रेरित करें, यही उससे प्रार्थना है ।

स्वजन : मोटा ! मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् के प्राकृतिक गुणधर्म किस रूप में परिवर्तित हों तो हम में सच्ची शरणागति विकसित हुई है, ऐसा समझ सकें ?

श्रीमोटा : जब मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् के सारे प्राकृतिक धर्म बदल जाँय, तब सच्ची शरणागति प्रगट होगी । यानी कि **मन संकल्प-विकल्प करता अटके, बुद्धि में से शंका-कुशंका, संदेह, अन्यथापन, तर्क, वितर्क - यह सब शमित हो और सोचने का तरीका बदले अर्थात् बुद्धि प्रज्ञास्वरूप होने की तैयारी में हो और प्राण के प्राकृतिक धर्म-आशा, इच्छा, लोलुपता, तृष्णा तथा काम, क्रोध, मद, मत्सर ये सब कम हो जाय और केवल भगवान के लिए कामना पैदा होती रहे तथा अहम् में से जीव-प्रकार का अभिमान, अहंकार कम हो और भगवान**

की चेतना से सब होता रहता है; ऐसी प्रतिष्ठा विकसित होकर चैतन्यमय बने और चित्त में जीवदशा के संस्कार न उठकर, वे भी मंद पड़ कर एकमात्र भगवान के प्रति की भावना के ही संस्कार पैदा होते रहें तब शरणागति फलित होगी ।

नामस्मरण और हृदयस्थ गुरु

स्वजन : मोटा ! अब तो गाड़ी मैं बैठ गया होऊँ ऐसी निश्चिंतता लगती है, तब भी दुर्वृत्तियाँ और शारीरिक आक्रमण आते हैं । अब तो मैंने अमुक जप करने का व्रत लिया है - यह ठीक है न ? आपका चित्र पेइन्ट करने का निश्चित किया है ।

श्रीमोटा : गाड़ी में बैठ गये हैं, ऐसी प्रतीति भले ही किसी भी प्रकार की तुम्हें हो गई है, यह बहुत आनंद की बात है । ऐसी प्रतीति होने के पश्चात् किसी भी प्रकार की कठिनाई उसे उस प्रतीति-दशा में से हटा नहीं पाएगी । कभी कभी हचकोले आएँगे सही । पर वे हचकोले खाली ही जानेवाले हैं ।

दुर्वृत्तियाँ अथवा शारीरिक विचार जागें, तब निर्भय रूप से अवश्य कहना - 'आओ, आओ ! हे मेरे मित्रों ! प्यारे स्वजन ! आइए ! तुम मेरे प्यारे का स्मरण करानेवाले हो ।' और ऐसे आभार मानकर उन्हें भी भगवान के चरणकमल में सौंप देना ।

प्रत्येक जो कुछ भी प्राप्त है, वह शक्ति-स्वरूप ही

है । मात्र उसका सदुपयोग करने की कला और ऐसी पलपल की जागृति साधक के हृदय में रहे तो उसे वैसे जीवन के उस दौरान में जीने में अत्यन्त रुचि बनी होगी ऐसे मानने के पर्याप्त कारण हैं । ऐसा मनुष्य कभी आलस या प्रमाद नहीं कर सकता ।

नामस्मरण ३५,००० से लेकर ४४,००० तक नित्य पहुँचाने का तुम्हारा लक्ष्य है, वह तो मुझे बहुत ही अच्छा लगा है, क्योंकि तुम्हारे मौन के बाद तुम ३०,००० जप करो अथवा २०,००० का तो व्रत लो ही ऐसा तो स्पष्ट मैंने कागज़ में लिखा था पर तुम्हें कहा नहीं था । परन्तु तुम्हें नौकरी की तो कोई चिंता है नहीं तो इससे भी अधिक करो तो भी क्या आपत्ति है ?

नामस्मरण पार होने का उपाय है, इतना ही नहीं, परन्तु मन को एकाग्र रखने में तथा कर्म के दूसरे अनुचित संस्कार न पड़ें और जागे संस्कार को मंद करने तथा भगवान के प्रेम में मन को लगाने में बहुत बड़ा योगदान देता है ।

मोटा के चित्र को पेइन्ट कराने की कोई आवश्यकता नहीं है । यह बुद्धि बिना की बात है । मैंने अपने गुरु का चित्र तक नहीं रखा हैं । उन्हें तो अपने हृदय में ही जीवित करना चाहिए ।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ हरि:ॐ ॥

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए,
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए... ॐ शरणचरण.

मन-वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें ...ॐ शरणचरण.

सभी मिलेके साथ, दिल में सद्‌भाव जगें, प्रभु (२)
भले हुए हों अपमान (२) वहाँ भी भाव बढ़ें ...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करने प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने ...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विचार, प्राण की वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हों...ॐ शरणचरण.

जैसा दिल में हो प्रभु, वैसे ही दिखने प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें ... ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे दूसरा उल्टा, प्रभु (२)
मुझसे कभी भी न हो (२) ऐसी मति दें ...ॐ शरणचरण

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहीं दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचारित करें ...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण, प्रभु तेरा भाव से पिघल जाय, प्रभु (२)
दिल में तुम्हारी भक्ति की (२) लहरें उछलें ...ॐ शरणचरण.

– **मोटा**

॥ हरि:ॐ ॥

परिशिष्ट

पूज्य श्रीमोटा प्रणीत

विवाहविधि

गृहशांति

अग्नि प्रज्वलित करने की प्रार्थना

(अनुष्टुप)

अग्नि प्रत्यक्ष शक्ति है, अग्नि प्रेरता प्रकाश,
अग्नि सर्व को शुद्ध, कैसा पवित्र है बनाता ॥

अग्नि की प्रेम-ज्वालाएँ प्रगटें उच्च उच्च कैसी !
जीवन में धारणा हृदयस्थ हम वैसी रखें ॥

प्रचंड शक्ति अग्नि की चेताने हृद में पूरी,
अग्नि की साधना उग्र जीवन में करनी रही ॥

अग्नि प्रगटाने के लिए अग्नि को क्या पाना रहा !
वही है साधना जानो, अग्नि है साधना सही,
अग्नि प्रज्वलित करने साधना है, क्या जरूरी ॥

जिज्ञासा रूप अग्नि को प्रज्वलित कर बार-बार,
ऐसी प्रचंड ज्वाला से प्रवेश करें चाहकर ॥

अग्नि इसीलिए ही प्रज्वलित कर प्रतिष्ठित हों जीवन में
आज मैं अग्नि को भाव से, सब के समक्ष प्रज्वलित करूँ ॥

(तिल-जव की २१ आहुतियाँ दें)

आहुति मंत्र

(अनुष्टुप)

उल्लास, सुख, शांति और आनंद प्रगट करने;
भाव से हृदय में प्रार्थना कर आहुति दें अब ।

(हाथ में नारियल रखकर ११ बार मंत्र बोलकर नारियल को होम करें)

यज्ञ पूर्णाहुति मंत्र

यज्ञ पूर्णाहुति अंत में, हृदयस्थ भाव से कर,
निष्ठा रखावें सही, भावपूर्वक प्रार्थना कर ।

॥ हरिः ॐ ॥

गृहशांति के लिए प्रार्थना

(अनुष्टुप)

प्रसंग आया आज है आनंद उठाने अनोखा,
उल्लास दिल में ऊँचा फ़व्वारे की तरह उड़ें ॥१॥

ऐसा हृदय का भाव होने के लिए सब में,
शांति, आनंद, उल्लास होने चाहिए पूरी तरह से ॥२॥

कहीं न हो विच्छेद न कहीं अशांति उठे,
ऐसी सावधानी रखें हम स्व हृदय में ॥३॥

भूल से भी मन ऊँचा, भूल से भी कभी कभी,
हम करें ऐसा, जिससे बनें प्रसन्न सभी ॥४॥

सुख शांति सभी की बनायें पूरी तरह से,
सभी के मन भावमय बनें हम से ॥५॥

संतुष्ट रखें हर प्रसंग में, सब को चाहकर,
सगे संबंधियों का करें, सत्कार प्रेमपूर्वक ॥६॥

आज मिली सभी के साथ शुभ प्रसंग में,
वातावरण ऊष्मा का भाव से हो तरलता में ॥७॥

भाव के तन्तु से भव्य रम्य तथा सखा जीवन में,
प्रसंग क्या एक बनने, स्वागत उसे करें हृदय से ॥८॥

शान्त, प्रसन्न रहें हृदय, सबके गृह में,
तो ही खुशी होगी सर्व हृदय आये अवसर में ॥९॥

सम्मान सबको देने हो उल्लास उर में,
योग्य विवेक प्रेरक यह गृहशांति यज्ञ है ॥१०॥

गृहशांति अनिवार्य इसीलिए निश्चय,
सर्व स्वजनों को आचरण के लिए प्रार्थना है ॥११॥

●

॥ हरि:ॐ ॥

विवाह-विधि

वधू के मातापिता का उद्‌बोधन

(अनुष्टुप)

स्वयं का अंग जानकर जिसे पाला है सदा,
वह पुत्री भाव से आज विवाह यज्ञ समर्पिता ।

विद्या के गहनें से सुपुत्री जो हुई
विभूषित, भाव से आज विवाह यज्ञ समर्पिता ।

एक दूसरे के साथ, जीवन में प्रेम-भाव से,
यज्ञ जीवन का यह बनाये रखो तुम ।

जीना गिनो क्रांति को करे वह जीना,
'जीवन के लिए उत्क्रांति होने' विवाह मानना ।

काम तुष्टि का ध्येय, विवाह कभी भी न हो ।
वृत्ति समर्पित हेतु विवाह का उद्देश्य जानें ।

दोनों होते आज एक, एकभाव से जीवन जीएँ,
दोनों एक दूसरे से अच्छा व्यवहार कर शोभें ।

●

(अब वर-वधू एक दूसरे को हार पहनाएँगे)

॥ हरिः ॐ ॥

विवाह-भावना

(अनुष्टुप)

बुज़ुर्गों की उपस्थिति में प्रतिज्ञा लेते हम ।
यज्ञ यह ज़िंदगी का साथ में आचरण करें हम ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' १

अनोखा मूल्य जीवन का, ज़िंदगी का जानकर,
यज्ञ की भावना प्रेरित बढ़ाएँ कदम हम ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' २

आहुति वृत्तियाँ की, समर्पित कर करके पथ में,
संयम रूपी जीवन-पुष्प, पुष्पित करेंगे प्रेम से ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' ३

व्रत यह ज़िंदगी का, सरल न उसे पालना,
समझकर आज वह दोनों जुड़ें, चाहकर गहराई से ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' ४

भोग लेने पर प्रेम, भाव तो उड़ जाता है,
त्याग समर्पण से प्रेम और भी खिला करे ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' ५

प्रेम के भाव का ज्ञान, प्राप्त कर हृदय से,
चाह चाहकर दोनों साथ, उड़ेंगे जीवन में ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' ६

कदम सात तो साथ चलने से मित्रता स्फुरित हो,
जीवन-भूमिका में बर्ताव वैसा दोनों करें ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' ७

भोगने, टहलने के लिए ज़िंदगी की क्या क़ीमत ?
ज़िंदगी तप के लिए, भाव से एक होते जाएँगे ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' ८

गुलाब जैसा सौंदर्य निरा भरा न जीवन में,
काँटे भी साथ हैं जानकर, जुड़ें हम हृदय से ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' ९

सुख-दु:ख और शोक हर्षादि की वृत्तियाँ,
निभायें समभाव से उसे, मिलें आज जीवन में ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' १०

महत्त्व देकर साथी को मिटा देकर स्वयं को,
स्वयं फलने-फूलने हेतु जुड़ें परस्पर ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' ११

प्रेम न भोगना जानें, देना जानें चाह,
भाव को विकसाने के लिए हम आज जुड़ें ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' १२

आनंद ज़िंदगी के लिए, भीगे उसी भाव से,
दूसरे को स्पर्श करने, एक तो बनें हम ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' १३

आतुर दिल के भाव से, आज दोनों हम पथ पर,
ज़िंदगी प्राप्त करने हेतु एक तो बनें सही ।
'अग्नि को साक्षी रखकर, करें व्यवहार प्रेमभाव से
होने एक, आहुति दें, दिल से साथ होकर.' १४

●

॥ हरि:ॐ ॥

जीवनव्रत

(वर-वधू का हस्तमिलाप - वचन देते हैं)

(अनुष्टुप)

दोनों आचरण करें साथ, व्रत जीवन का
हम उभय जीएँगे, प्रेम से ही परस्पर । १

विचारों का बलात्कार हम एक दूसरे पर,
कर न सकें ऐसी जागृति रखें हृदय में । २

वृत्ति जो मालिकी की हम एक दूसरे पर,
भुगत सकें ऐसी नहीं हो कभी सचमुच । ३

हम परस्पर मिल, हिलमिलकर चाहे,
जीवन रूपी यज्ञ साथ में हम से हो सही । ४

प्रश्न अटपटे उठें, एक दूसरे का सहारा,
लेकर दिल से मिलकर सुलझें हमारे द्वारा । ५

साथ चलेंगे तो दोनों आनंद से जीने के लिए,
आनंद भोगने के लिए रखें दिल जागृति । ६

दोनों एक हो प्रेम से, परस्पर चाहकर,
न्योछावर हो हृदय से, जीने को मथें सही । ७

कठिनाई, विघ्न, उपाधि से लड़ें दृढ़ता से,
कंधे से कंधा मिलाके, साथ हम खड़े रहकर । ८

विवाह शरीर का नहीं, विवाह दिल का होने,
यदि गाएँ समक्ष सभी; आशा 'आशीष पाने' । ९

जीवन जीने के लिए, सद्‌बुद्धि जागे हृदय में,
प्रार्थना करके ऐसी, आज जुड़ें हम । १०

जो भी हो सर्व त्यागकर बाकी प्रसाद जो रहा,
विश्व में भोगने के लिए हममें चेतना जागे । ११

॥ हरिः ॐ ॥

सप्तपदी

(अनुष्टुप)

वर कहता है :

मिले पोषण वृद्ध्यर्थे मिले क्या आज दोनों,
दोनों घर चलें साथ, सुमेल से दोनों बर्तें ।

कन्या कहती है :

हम गृह वृद्धि करें, पोषण करने सही,
वैसा और उतना भाव से मथेंगे दोनों हम ।

वर कहता है :

प्रभु ने शक्ति हेतु, समर्पित किये आज दोनों को,
एक राह से संसार में अनुसरेंगे हम ।

कन्या कहती है :

प्रकट होता है अन्न से प्राण, शक्ति, ओजस, तेज तो,
अन्न की योजना करेंगे, दोनों उस तरह ।

वर कहता है :

प्रभु ने लक्ष्मी वृद्धि हेतु समर्पित किये आज दोनों को
एक भाव से जग में अनुसरेंगे प्रेम से ।

कन्या कहती है :

लक्ष्मी की वृद्धि - रक्षा हेतु उचित बर्तेगें
व्यवस्था उसकी उस रीति से करेंगे दोनों सब रीत से

वर कहता है :

प्रभु ने सुख वृद्धि हेतु समर्पित किये आज दोनों को,
एकाग्रता से संसार में, अनुसरण करेंगे ।

कन्या कहती है :

सुख-समृद्धि वृद्धि हेतु भेद-बुद्धि त्याग कर,
सुखी कुटुंब पूरे को यत्न करेंगे चाहकर भी ।

वर कहता है :

सुख साधन वृद्ध्यर्थे समर्पित किये आज दोनों को,
दोनों एक होकर, संसार में चलेंगे साथ ।

कन्या कहती है :

संस्कृति-धर्म रक्षार्थ आचरण करें पथ पर
वह सब करेंगे उस भाव से परस्पर साथ रहकर ।

वर कहता है :

सौंदर्य वृद्धि के लिए प्रभु ने मिलाये जग में,
सर्व समर्पण कर के संसार में अनुसरण करें हम ।

कन्या कहती है :

पवित्रता से जन्मता है सौंदर्य अतः इस पथ में,
वैसे होकर ऋतु की तरह, आनंद करें परस्पर ।

वर कहता है :

सात कदम साथ चलने से, मित्रता होती,
आज मेरी तुम मित्र बनी हो सर्वभाव से;
प्रसन्न रखने धर्म, मित्र का हो जीव यदि,
संसार में सब त्यागकर भी जीएँगे दोनों ।

कन्या कहती है :

हुए सख्य तुम मेरे परस्पर उस भावना,
साथ में उद्दीप्त कर जीएँगे, एक दूसरे में ।
एक दूसरे का साथ, सहकार के रूप में,
जीवन में प्रेरित कर, व्यवहार करें हम ।
एक दूसरे के प्रति भेद न रखेंगे जीवन में,
बरतकर ऐसे प्रीति, शांति, सुख पायेंगे पथ पर ।
दोनों मित्रता में तो समान हैं पूरी तरह,
अतः परस्पर वैसे रहकर बरतेंगे सदा ।

●

(परस्पर मैत्री भावना दृढ़ करने यहाँ वर-वधू चार फेरे घूमेंगे ।)

मंगल भावना

मंगलाष्टक

(शार्दूलविक्रीडित)

जैसा भाव खिला करे हृदय में, वैसी खिले चेतना,
और आधार के सभी करण को स्पर्श कर हरे क्षुब्धता;
कैसा **जीव** का करे **शिव** पन ! आनंद कैसा निश्चल !
ऐसी तो शुभ चेतना हरि की प्रेरित हो मंगलम् । १

यह संसार-लीला अव्यक्त हरि की, उसमें छिपे गहरे,
खुद खुद से खुद खेल खेलता, जाने न कोई कुछ;
जिसे भक्ति और भगीरथ तप से संत हृदय में पाते,
ऐसे श्रीहरि, संत, ज्ञानीजन के बरसे सदा मंगलम् । २

स्वयं क्या निज भक्त के दुःख सह कर रक्षा करें जीव की,
प्रेरित करता सदा जीवन में, क्या सूक्ष्म स्वयं रहकर
जिसका प्रेम बहे अस्खलित क्या वह प्रेम लक्ष्मी सहीं
वैसा प्रेम मिला करे जीवन का, प्रार्थना करूँ हो मंगलम् । ३

चले यज्ञ अनादिकाल से जहाँ होमित स्वयं सदा,
देकर अंजलि आप की हृदय से यह विश्व चलाते;
सभी में स्वयं मिल, मिट, जीवन को भाव द्वारा प्रभु देते,
ऐसे आप प्रसन्न प्रेम से होकर बक्षो प्रभु मंगलम् । ४

जहाँ तहाँ चित्र-विचित्रता, विविधता, विस्तार कैसे खेलें,
लगे उग्र प्रचंड भय भरा, कैसा विसंवाद जो;
उसमें तब भी भरे पड़े सभर हैं संवाद सारे मूल में,
उस संवाद का लक्ष्य रख जीवन में जन्माना मंगलम् । ५

स्वयं खुद पुरुष और प्रकृति है, दोनों फिर भी एक हैं ;
खेलती है प्रकृति सदा जीवन में, वह अपने ढंग से सही;
तब भी वह हरि-चेतना से कहीं भिन्न नहीं किसी ढंग से,
उस तरह दोनों के जीवन में ऐक्य हो मंगलम् । ६

स्वयं खुद खेले अनंत विधि से ब्रह्मांड में श्रीहरि,
स्वयं एक, अनेक रूप होकर जो भी बना क्या हरि;
नहीं है भेद कुछ भी सर्व में, खेले स्वयं उस ढंग,
बोध दे मानवी ग्रहण कर उस रीत से हृदय में, पाओ तुम मंगलम् । ७

संसार में प्रदीप्त होने खुमारी को आ मिले आपदा,
है दुःख 'दीप्त करने जीवन का उत्कर्ष' मानो सदा;
कैसी भावभरी दिल भरी चुनकर साथ,
आज शुभ घड़ी महा युगल की संसार का मंगलम् । ८

॥ हरिः ॐ ॥

साधना-मर्म

१. मुख से या मन में जागृत रूप से जप, साथ ही हृदय-प्रदेश पर ध्यान तथा चेतना के साथ चिंतन सह भावात्मक भाव का रटन ।

२. प्रत्येक क्षण में सतत समर्पण : अच्छे तथा बुरे दोनों का ।

३. साक्षीभाव, जागृति, विचारों की शृंखला न जोड़ें ।

४. हो सके उतना अधिक वाचिक और मानसिक मौन रखें, अभ्यस्त हो, अत्यधिक शरणभाव से जीवन में चेतनापूर्वक जागृति को व्यवस्थित करें ।

५. आग्रह प्रभु-चिंतन के अलावा सभी आग्रहों को छोड़ें, नम्रता रखें, शून्य होने का ध्येय रखें ।

६. बहुत भावपूर्ण हृदयस्थ हो आर्द्र और आर्तभाव से प्रार्थना करें, भगवान को सभी सुख-दुःख बतलाते रहें, उनके साथ आत्मनिवेदन द्वारा बहुत गहरा व्यक्तिगत संबंध स्थापित करें, मन में कुछ भी विचार न आने दें ।

७. जो भी कार्य करें प्रभु के हैं समझकर करें -जरा भी संकोच किए बिना उसे बहुत प्रेमपूर्वक करें । प्रत्येक प्रसंग, घटना हमारे कल्याण के लिए ही है और प्रत्येक प्रवृत्ति हमारे अपने विकास के लिए है । प्रत्येक प्रसंग के पीछे प्रभु का गूढ शुभ संकेत छिपा है ।

८. आत्मलक्षी-अंतर्मुखी बनें, मात्र अपनी दुनिया में रहें । जान बूझकर अपने आपको न उलझने दें ।

९. अन्य की सेवा ही प्रभु सेवा समझें, सेवा लेनेवाले, सेवा देनेवाले पर, सेवा करने का अवसर देकर उपकार करते हैं । राम ने दिया है और राम को दे रहे हैं, वहाँ मेरा-मेरा कहाँ रहा ? तुम्हारा इस जगत में है क्या ?

१०. प्रत्येक कार्य, प्रत्येक बातचीत, व्यवहार हमारे ध्येय को गति दे ऐसे उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर करें । पढ़ते-लिखते समय और प्रत्येक कर्म करते समय भाव की स्मरण धारणाओं का अभ्यास करते रहें ।

११. वृत्ति का मूल खोजें, उसका पृथक्करण करें । उसमें खोये बिना, उसका तटस्थतापूर्वक और स्वस्थतापूर्वक निरीक्षण करें ।

१२. प्रभु की प्रत्येक कला, सौन्दर्य, रम्यता, विशुद्धता आदि प्रभु के वरदानों में रहे भाव उसके अनुरूप भाव का हमारे में अवतरण हो ऐसी प्रार्थना करें ।

१३. उमंग, आवेश और प्रेमभाव को ऐसे ही न जाने दें, साथ ही उसमें डूब भी न जाएँ । उसका साधना में उपयोग करें, तटस्थता बनाए रखें ।

१४. खाते और पानी पीते हुए जीवन में चेतन शक्ति का तन्मय भाव से प्रार्थना करें, शौच, पेशाब आदि क्रियाओं के समय विकारों, कमजोरियों इत्यादि का विसर्जन के भाव से प्रार्थना करें ।

१५. स्थूलता को त्यागकर सूक्ष्म तत्त्व को ध्यान में रखें । वृत्ति की शुद्धि करें, भाव की वृद्धि करें ।

१६. प्रभु सचराचर है । 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना रखें ।

१७. प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु के उज्ज्वल पक्ष को ही देखें । किसी के भी काजी न बनें, किसी को भी जल्दी से अभिप्राय न दें, वाद विवाद न करें, अपना आग्रह न रखें, दूसरों के शुभ उद्देश्य में मदद करें, मानसिक और सार्वत्रिक उदारता जीवन में प्रगट करें, अत्यधिक प्रेमभाव बनाए रखें, प्रकृति का रूपान्तर करना है, प्रकृतिवश सहज न होनेवाले कर्मों को नजरअंदाज कर आगे बढ़ें, फल की आसक्ति त्यागें, स्वयं पर होते अन्यायों, आ पड़ती कठिनाइयों आदि का मूल हम में ही है, ऐसा दृढ़तापूर्वक मानें, गुरु में प्रेम भक्तिभाव को बनाते रहें, तटस्थता, समता और समर्पण के त्रिवेणी संगम को नित्य बनाए रखें, सदा प्रसन्नता बनाए रखें, कृपा और पुरुषार्थ के युगल को जीवन में उतारें, प्रत्येक कर्म के आदि, मध्य और अंत में प्रभु की स्मृति बनाए रखें, मन को निःस्पंद करें, रागद्वेष निर्मूल करने की जागृति सदैव रखें, आध्यात्मिक अनुभवों को नित्य के जीवन में आचरण में लावें, कहीं भी किसी भी दायित्व से भागें नहीं, जो भी प्रभु-इच्छा से प्राप्त हो उसे प्रभु-प्रसाद समझ कर प्रसन्नता से लें । कहीं भी किसी से तुलना या ईर्ष्या न करें, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति यह मन का भ्रम है, जीवन-साधना के लिए सब कुछ सानुकूल ही होता है, प्रभुमय—उनके मूक यंत्र—होने की एक तमन्ना जीवन में बनाए रखें ।

१८. कर्म में, कर्म का महत्त्व नहीं है, परन्तु जीवन के भाव का सतत एक समान, सजग चिंतन रहा करे, यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है । ऐसा सजग अध्ययन कर्म करते हुए प्रत्येक क्षण में बनाए रखें ।

-श्रीमोटा

॥ हरि:ॐ ॥

पूज्य श्रीमोटा के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

जन्म : ता. ४-९-१८९८ भाद्रपद्र कृष्ण चतुर्थी, संवत १९५४

स्थान : सावली, जिल्ला वडोदरा (गुजरात), **नाम : चूनीलाल**
माता : सूरजबा, **पिता :** आशाराम, **जाति :** भावसार ।

१९१६ : पिता की मृत्यु

१९०५ से १९१८ : टुकड़ों में पढ़ाई के साथ कठिन मजदूरी ।

१९१९ : मैट्रिक उत्तीर्ण ।

१९१९ से २० : वडोदरा कॉलेज में ।

१९२१ : कॉलेज का त्याग ।

१९२१ : गुजरात विद्यापीठ

१९२१ : विद्यापीठ का त्याग । हरिजन सेवा का आरंभ ।

१९२२ : मिरगी की बीमारी से तंग आकर गरुड़ेश्वर की चट्टान से आत्महत्या का प्रयास, दैवी रक्षा, हरि:ॐ जप से रोग मिटाने का सफल प्रयोग।

१९२३ : 'तुज चरणे' तथा 'मनने' की रचना ।

१९२३ : वसंतपंचमी को पूज्य श्रीबालयोगीजी द्वारा दीक्षा ।
श्री केशवानंद धूणीवाले दादा के दर्शन के लिए सांईखेड़ा गए । रात्रि को स्मशान में साधना और दिनभर प्रभु प्रीत्यर्थ हरिजन सेवा ।

१९२६ : विवाह-हस्तमिलाप के अवसर पर समाधि का अनुभव ।

१९२७ : हरिजन आश्रम, बोदाल में सर्पदंश परिणामस्वरूप अखण्ड हरि:ॐ का जाप किया ।

१९२८ : 'तुज चरणे' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन ।

१९२८ : प्रथम हिमालय यात्रा ।

१९२८ : साकोरी के पूज्य श्रीउपासनीबाबा का नड़ियाद में आगमन, उनके आदेश पर साकोरी गये, वहाँ मलमूत्र के बिस्तर में सात दिन ।

१९३० : मन की नीरवता का साक्षात्कार ।

१९३० से ३२ : के दौरान साबरमती, वीसापुर, नासिक और यरवड़ा जेल में उद्देश्य देशसेवा का नहीं, साधना का । कठोर परिश्रम और लाठी चार्ज के दौरान प्रभुस्मरण-मौन । विद्यार्थिओं को समझाने के लिए वीसापुर जेल में सरल गुजराती भाषा में श्रीमद् भगवद्गीता को लिखा 'जीवनगीता' ।

१९३४ : सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार ।

१९३४ से १९३९ : के दौरान हिमालय में अघोरी बाबा के पास गए, धूँवाधार के झरने के पीछे की गुफा में साधना । चैत्र मास में २१ उपलों की ६३ धुनियाँ प्रज्वलित कीं, नर्मदा किनारे खुले में शिला पर नग्न बैठकर साधना, शीरडी के सांईबाबा के प्रत्यक्ष दर्शन-आदेश-साधना के अंतिम चरण का मार्गदर्शन ।

१९३९ : २९-३-३९ रामनवमी संवत् १९९५ काशी में निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार। हरिजन सेवक संघ से त्यागपत्र । 'मनने' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन।

१९४० : ९-९-४० हवाई मार्ग से अहमदाबाद से कराँची जाने का गूढ़ आदेश।

१९४१ : माता की मृत्यु ।

१९४२ : हरिजन सेवक संघ से अलग होने पर भी हरिजन कन्या छात्रालय के लिए मुंबई में चन्दा इकट्ठा किया । दो बार सख्त पुलिसमार, देहातीत अवस्था के प्रमाण ।

१९४३ : २४ फरवरी में गाँधीजी के पेशाब के जहरीले जन्तुओं का अपने पेशाब में दर्शन । नैमित्तिक तादात्म्य का अनुभव ।

१९४५ : हिमालय की यात्रा-अद्भुत अनुभव ।

१९४६ : हरिजन आश्रम, अहमदाबाद, मीरां कुटीर में मौन एकांत का आरंभ ।

१९५० : दक्षिण भारत के कुंभकोणम् में कावेरी नदी के किनारे हरि:ॐ आश्रम की स्थापना (१९७६ में देहत्याग के बाद आश्रम बंद कर दिया गया।)

१९५४ : सूरत के कुरुक्षेत्र स्मशान भूमि जहांगीरपुरा, सूरत में एक कमरे में मौन एकांत का आरंभ ।

१९५५ : २८-५-५५ नड़ियाद, शेढी नदी के किनारे हरि:ॐ आश्रम की स्थापना।

१९५६ : २३-४-५६ तापी नदी के तट पर कुरुक्षेत्र स्मशान भूमि जहांगीरपुरा, सूरत में हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।

१९६२ से १९७५ : शरीर के अनेक रोग लगातार प्रवास के साथ ६८ अध्यात्म अनुभव ग्रन्थों का लेखन प्रकाशन ।

१९७६ : फाजलपुर महीनदी के किनारे श्री रमणभाई अमीन के फार्म हाउस में ता. २३-७-७६ को मात्र ६ व्यक्तियों की उपस्थिति मे आनंदपूर्वक देहत्याग । स्वयं के लिए ईंट-चूने का स्मारक न बनाने का आदेश और इस निमित्त प्राप्त राशि का उपयोग गुजरात के दूरदराज पिछड़े गाँवों में प्राथमिक पाठशाला के कमरे बँधवाने में उपयोग करने की सूचना।

॥ हरि:ॐ ॥

स्वयं का अंग जानकर जिसे पाला है सदा,
वह पुत्री भाव से आज विवाह यज्ञे समर्पिता ।

- श्रीमोटा

'विवाह हो मंगलम्', प्रथम संस्करण, पृ. २०९